सोपान

बच्चन की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं का संग्रह

स्वसंकलित

बच्चन

ग्रंथ-संख्या—१६०
प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २०१० वि०
मूल्य ५) Rs 5/-

मुद्रक—
बी० पी० ठाकुर
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

समर्पण

तेजी

अमिताभ

अजिताभ

प्रभात

और

जगदीश

को

'बच्चन'

भूमिका

'सोपान' संकलन है। इसकी कविताओं का चुनाव मैंने अपनी पिछले बीस वर्षों की रचनाओं से किया है। मेरा पहला संग्रह 'तेरा हार' १९३२ में प्रकाशित हुआ था। मेरा नवीनतम संग्रह, जिससे भी रचनाएँ इस संकलन में सम्मिलित की गई हैं, 'मिलन-यामिनी' है जो १९५० में प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार बीस वर्षों में लिखी अपनी प्रमुख कविताओं को मैंने यहाँ एकत्र किया है।

संकलन से सब को संतुष्ट करना कठिन है। कविताएँ केवल अपनी विशेषता और गुणों के कारण प्रिय नहीं बनतीं, इसे सब काव्य-प्रेमी जानते हैं। हो सकता है, बहुतों को यह देखकर असंतोष हो कि उनकी प्रिय रचना इसमें नहीं है। अपनी तरफ से मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि संकलन करते समय मैंने जन-रुचि को कभी अपने ध्यान से उतरने नहीं दिया। मुझे जीवन में जो भी अवसर उसे जानने के मिले हैं, मैंने उनका पूरा लाभ उठाया है। जनता कोई रचना क्यों पसंद करती है, इसे वह स्वयं नहीं जानती। इसको समझने में समालोचकों के पसीने

छूट जाते हैं और उनका विश्लेषण कभी सम्यक हो पाता है, इसमें मुझे संदेह है। मैंने अपना फैसला हमेशा जनरुचि से माँगा है।

हिंदी के समालोचकों ने भी बड़ी सहायता की है, मेरी रचनाओं के विषय में प्राय: मौन रहकर। उनकी चुप्पी के कारण जनता को निरातंक, स्वच्छंद और निष्पक्ष अपना निर्णय बनाने में सहायता मिली है। वे बिना काम मेरे दाहने-बाएँ रहते तो जनता से मेरा वह सीधा संपर्क न हो पाता, जिससे उसने तो शायद मुझसे कम, पर उससे मैंने बहुत कुछ सीखा है। इस अवसर पर समालोचकों और जनता दोनों के प्रति यदि मैं अपनी कृतज्ञता प्रगट करने से चूकूंगा तो मैं अपने को अपराधी समझूंगा। कुछ लोगों ने कभी-कभी मेरी अनुमति माँगकर, मगर अधिकतर बिना मुझसे पूछे-पछोरे, बिना मुझे सूचित किए और कभी-कभी तो मेरे मना करने पर भी मेरी कविताओं को पाठ्य पुस्तकों में रख दिया है। ये वे लोग हैं जिनको मेरी लोक-प्रियता से ईर्ष्या है। जो कविता कोर्स की किताबों में रख दी जाती है, उससे विद्यार्थियों को आजीवन अरुचि हो जाती है, इसे मैं अपने बीस वर्ष के अध्यापन के अनुभव से जानता हूँ। मुझे पता नहीं कि पाठ्य पुस्तकें बनाने के संबंध में भारत प्रजातंत्र का 'कापीराइट' कानून क्या कहता है। कचहरी की झंझटों में फँसने को दिल गवारा नहीं करता, नहीं तो मैं इनमें से एक-एक के ऊपर मुकदमा चलाता। मेरा उनका न्याय किसी और दरबार में होगा।

सच तो यह है कि हिन्दी की जनता बहुत उदार है। उसने मुझे खुले हृदय से प्रशंसा, प्रेम और प्रोत्साहन दिया है। और शायद इसी कारण मैं अपनी त्रुटियों और अपने दोषों को अधिक सतर्कता से देखता रहा हूँ। मुझे बीस वर्ष से अधिक लिखते हो गए, कविता लिखना अभी मुझे नहीं आया। फिर भी कुछ प्रगति तो की है। इतना ही समय साधना करने को मुझे और मिले तो शायद अपनी रचना से मुझे कुछ संतोष हो सके। इंगलैण्ड भी इसी साधना के संबंध में आया हूँ। यहाँ जो कुछ सीख रहा हूँ, उससे संभव है वाणी पर

कुछ और अधिकार प्राप्त कर सकूं। योरोप में काव्य की एक सुसंगठित परंपरा है। एशिया में भी बहुत कुछ सीखने को है। लिखना कठिन कला है—ईट्स के शब्दों में "Gradual time's last gift, a written speech"

यह संकलन मैंने इंगलैंड आने के पूर्व तैयार किया था। बीस वर्ष का समय कम नहीं होता। ध्यान आया, जरा देखूं कि जो कुछ मैंने लिखा है उसमें कुछ चीजों को क्यों अधिक पसंद किया गया है। शायद इसे जानने से मुझे अपने भविष्य के विकास में कुछ सहायता मिले।

नाम सोचने में कोई दिक्कत नहीं हुई। ऐसा लगा, कहीं ऊँची पहाड़ी पर कविता देवी का मंदिर है। वहाँ तक पहुँचने को हजारों सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ेंगी। गिनती की कुछ चढ़ सका हूँ, फिर भी पीछे मुड़कर देख तो लूं कि कितना चढ़ आया और ठीक जा भी रहा हूं कि नहीं। ये सीढ़ियाँ बड़ी अटपटी हैं, बहुत जागरूक रहना पड़ता है। इनपर ऐसा भी होता है कि उतरते तो जा रहे हैं नीचे और मन में समझे हुए हैं कि चढ़ रहे हैं ऊपर। इस संकलन के द्वारा अपने पथ-निर्देशन के लिए जैसे मैंने एक छोटा-सा नक्शा बना लिया है—ऐसा समझना चाहिए। जो मेरी प्रगति में रुचि रखते हैं, शायद उनको भी इससे मेरी जाँच-परख करने में कुछ सहायता मिले।

कोई भी संकलन संपूर्ण रचना का स्थान नहीं ले सकता। गुलदस्ता मधुवन की जगह नहीं ले सकता। ठीक है, सुन्दर-सुन्दर फूलों को काटकर लाइये, गुलदानों में रख दीजिए, पर चिड़ियों की चहक, भौंरों की गुंजार, तितलियों की बहार, घाव सहलाती-सी बयार, आत्मसमर्पण-सी बिछी हुई हरी घास, और आशीर्वाद-सा फैला हुआ नीला आसमान, जिनके बीच, जिसके नीचे उन्हीं फूलों का कुछ और सुन्दर सौंदर्य था, आप नहीं ला सकते। मधुशाला की रुबाइयों का जो रंग, निशानिमंत्रण के गीतों का जो रस उनके वातावरण के बीच में है, उन्हें

उसके बाहर कर देने से गायब हो गया है। मुझे संकलन को दुहराते हुए ऐसा ही लगा। पता नहीं आपका अनुभव क्या हो। फिर भी मधुवन भी है, और फूलदान भी सजाए जाते हैं।

मेरी समझ में कविता ऐसी होनी चाहिए जो न तो अपने गुण और शक्ति से पाठक को दवा दे और न ऐसी ही कि उसे कवि की प्रशंसा में उछाल दे। जहाँ वह ऐसी है, वहाँ उसमें न दैवी विदग्धता है और न दानवी उच्छृंखलता; उसमें वहाँ मानवी सुख-दुख-जनित भावमयता भर है। कविता सचमुच पाठक और कवि के हृदय को जोड़ने का साधन है—या एक मानव हृदय को दूसरे मानव हृदय के साथ। जहाँ वह इससे कम या ज्यादा है, वहाँ वह अपनी सीमा से बाहर है और उतनी ही कम कविता है। यह कोई कविता की परिभाषा नहीं, मगर मैं चाहूँगा कि आप मेरी रचनाओं को इस प्रकार देखें, शायद आप इसी प्रकार देखते भी रहे हैं।

सेंट कैथरीन्स कालेज
केम्ब्रिज, इंगलैण्ड
७-२-५३

'बच्चन'

क्रम

एकांत संगीत

आकुल अन्तर

सतरंगिनी

बंगाल का काल

हलहल

सूत की माला

खादी के फूल

मिलन यामिनी

प्रारंभिक रचनाएँ

भाग १–२

कोयल

अहे, कोयल की पहली कूक !
अचानक उसका पड़ना बोल,
हृदय में मधुरस देना घोल,
श्रवणों का उत्सुक होना, बनना जिह्वा का मूक ।

कूक, कोयल, या कोई मन्त्र,
फूंक जो तू आमोद-प्रमोद,
भरेगी वसुन्धरा की गोद ?
काया-कल्प-क्रिया करने का ज्ञात तुझे क्या तंत्र ?

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया-नया शृङ्गार,
सजाकर निज तन विविध प्रकार,
देखेगी ऋतुपति-प्रियतम के शुभागमन की बाट ।

करेगा आकर मंद समीर
बाल-पल्लव-अधरों से बात,
ढकेंगी तरुवर गण के गात,
नई पत्तियाँ पहना उनको हरी सुकोमल चीर ।

वसंती, पीले, नीले, लाल,
बैंगनी आदि रंग के फूल,
फूलकर गुच्छ-गुच्छ में झूल,
झूमेंगे तरुवर शाखा में वायु-हिंडोले डाल।

मक्खियाँ कृपणा होंगी मग्न
माँग सुमनों से रस का दान,
सुना उनको निज गुन-गुन गान,
मधु-संचय करने में होगी तन-मन से संलग्न!

नयन खोले सर कमल समान
बनी-वन का देखेंगे रूप—
युगल जोड़ी की सुछवि अनूप;
उन कंजों पर होंगे भ्रमरों के नर्तन गुंजान।

बहेगा सरिता में जल श्वेत,
समुज्ज्वल दर्पण के अनुरूप,
देखकर जिसमें अपना रूप,
पीत कुसुम की चादर ओढ़ेंगे सरसों के खेत।

कुसुम-दल से पराग को छीन,
चुरा खिलती कलियों की गंध,
कराएगा उनका गंठबन्ध,
पवन-पुरोहित गन्ध सुरज से रज सुगन्ध से भीन।

फिरेंगे पशु जोड़े ले संग,
संग अज-शावक, बाल-कुरंग,
फड़कते हैं जिनके प्रत्यंग,
पर्वत की चट्टानों पर कुदकेंगे भरे उमंग।

पक्षियों के सुन राग-कलाप—
प्राकृतिक नाद, ग्राम, सुर, ताल,
शुष्क पड़ जाएँगे तत्काल,
गंधर्वों के वाद्य-यंत्र किन्नर के मधुर अलाप।

इन्द्र अपना इन्द्रासन त्याग,
अखाड़े अपने करके बन्द,
परम उत्सुक मन दौड़ अमन्द,
खोलेगा सुनने को नन्दन-द्वार भूमि का राग!

करेगी मत्त मयूरी नृत्य
अन्य विहँगों का सुनकर गान,
देख यह सुरपति लेगा मान,
परियों के नर्तन हैं केवल आडम्बर के कृत्य!

अहे, फिर 'कुऊ' पूर्ण-आवेश!
सुनाकर तू ऋतुपति-संदेश,
लगी दिखलाने उसका वेश,
क्षणिक कल्पने मुझे घुमाए तूने कितने देश!

कोकिले, पर यह तेरा राग
हमारे नग्न-वुभुक्षित देश
के लिए लाया क्या संदेश ?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ?

कलियों से

'अहे, मैंने कलियों के साथ,
जब मेरा चंचल बचपन था,
महा निर्दयी मेरा मन था,
अत्याचार अनेक किए थे,
कलियों को दुख दीर्घ दिए थे,
तोड़ इन्हें बागों से लाता,
छेद-छेद कर हार बनाता !
क्रूर कार्य यह कैसे करता,
सोच इसे हूँ आहें भरता।
कलियो, तुमसे क्षमा माँगते ये अपराधी हाथ।'

'अहे, वह मेरे प्रति उपकार !
कुछ दिन में कुम्हला ही जाती,
गिरकर भूमि-समाधि बनाती।
कौन जानता मेरा खिलना ?
कौन, नाज से डुलना-हिलना ?
कौन गोद में मुझको लेता ?
कौन प्रेम का परिचय देता ?
मुझे तोड़ की बड़ी भलाई,
काम किसी के तो कुछ आई;
बनी रही दो-चार घड़ी तो किसी गले का हार।'

'अहे, वह क्षणिक प्रेम का जोश !
सरस-सुगंधित थी तू जब तक,
बनी स्नेह-भाजन थी तब तक।
जहाँ तनिक-सी तू मुरझाई,
फेंक दी गई, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष ?'

'बदलता पल-पल पर संसार,
हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता ?
इससे केवल यही सोचकर,
लेती हूँ संतोष हृदय भर—
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार !'

उपवन

माली, उपवन का खोल द्वार !
वहु तरुवर ध्वज-से फहराता,
वहु पत्र-पताके लहराता,
पुष्पों के तोरण छहराता,
यह उपवन दिखला एक बार !

माली, उपवन का खोल द्वार !
कोकिल के कूजन से कूजित,
भ्रमरों के गुंजन से गुंजित,
मधुऋतु के साजों से सज्जित,
यह उपवन दिखला एक बार।

माली, उपवन का खोल द्वार।
अपने सौरभ में मदमाता,
अपनी सुखमा पर इतराता,
नित नव नन्दन वन का भ्राता,
यह उपवन दिखला एक बार।

"मत कह-उपवन का खोल द्वार।
यह नृप का उपवन कहलाता,
नृप दंपति ही इसमें आता,
कोई न और आने पाता,
यह आज्ञा उसकी दुर्निवार।

मत कह-उपवन का खोल द्वार।
यदि लुक-छिपकर कोई आता,
रखवालों से पकड़ा जाता,
नृप संमुख दंड कड़ा पाता,
अन्दर आने का तज विचार।"

माली, उपवन का खोल द्वार
उपवन मेरा मन ललचाता,
आकर न यहाँ लौटा जाता,
मैं नहीं दंड से भय खाता,
मैं सुषमा पर बलि बार-बार।

माली, उपवन का खोल द्वार।
यह देख विहंगम है जाता,
कब आज्ञा लेने यह आता,
फिर मैं ही क्यों रोका जाता,
मैं एक विहंग मानवाकार।

माली, उपवन का खोल द्वार !
कल्पना - चपल - परधारी हूँ,
भावना - विश्व - नभचारी हूँ,
इस भू पर एक अनारी हूँ,
फिरता मानव-जीवन बिसार ।

माली, उपवन का खोल द्वार ।
उपवन से क्या ले जाऊँगा,
तृण-पात न एक उठाऊँगा,
कैसे कुछ ले उड़ पाऊँगा,
निज तन-मन ही हो रहा भार ।

माली, उपवन का खोल द्वार !
भय, मीठे फल खा जाऊँगा ?
कुछ काट-कुतर बिखराऊँगा ?
मैं कैसा विहग बताऊँगा,
मैं खाता निज उर के अँगार ।

माली, उपवन का खोल द्वार ।
भय, नीड़ बना बस जाऊँगा ?
अपनी संतान बढ़ाऊँगा ?
सुन अपना नियम सुनाऊँगा—
एकाकी वन-उपवन विहार ।

माली, उपवन का खोल द्वार।
विहगों से द्वेष बढ़ाऊँगा?
भ्रमरों को मार भगाऊँगा?
अपने को श्रेष्ठ बताऊँगा?
मैं उनके प्रति स्वर पर निसार।

माली, उपवन का खोल द्वार।
गुरु उनको आज बनाऊँगा,
श्रम युत शिष्यत्व निभाऊँगा,
शिक्षा कुछ उनसे पाऊँगा,
सिखलाएँगे वे चिर उदार।

माली, उपवन का खोल द्वार।
लतिका पर प्राण झुलाऊँगा,
पल्लव दल में छिप जाऊँगा,
कुछ ऐसे गीत सुनाऊँगा,
जो चिर सुन्दर, चिर निर्विकार।

माली, उपवन का खोल द्वार।
परिमल को हृदय लगाऊँगा,
कलि-कुसुमों पर मँडराऊँगा,
पर फड़काकर उड़ जाऊँगा,
फिर चहक-चहक दो-चार बार।

गीत-विहंग

गीत मेरे खग बाल !
हृदय के प्रांगण में सुविशाल
भावना-तरु की फैली डाल,
उसी पर प्रणय-नीड़ में पाल
रहा मैं सुविहग बाल !

पूर्ण खग से संसार,
स्वरों में जिनके स्वर्गिक गान,
परों में उडगण-उच्च उड़ान,
देख सुन इनको ये अनजान
कँप रहे विहग कुमार।

कल्पना-चलित बयार
खोलकर प्रणय-नीड़ का द्वार,
इन्हें बाहर लाई पुचकार,
उड़े उगते लघु पंख पसार,
गिरे पर तन के भार।

धरा कितनी विकराल !
झुलाती मन्द-मृदुल वह डाल,
कठोरा यह काँटों की जाल,
यहाँ पर आँखें लाल निकाल
तक रहे वृद्ध विडाल !

प्रथम रोदन का गान
बनाता स्त्री का सफल सुहाग,
पुरुष का जाग्रत करता भाग,
मिटा पर इनका रोदन-राग
शून्य में हो लय मान।

भला मानव संसार,
तोतले जो सुन शिशु के बोल,
विहँसकर गाँठ हृदय की खोल,
विश्व की सब निधियाँ अन्मोल
लुटाने को तैयार !

हुआ मुखरित अनजान
हृदय का कोई अस्फुट गान,
यहाँ तो, दूर रहा संमान,
अनसुनी करते विहग सुजान,
चिढ़ाते मुँह विद्वान।

आज मेरे खग बाल
बोलते अधर सँभाल-सँभाल,
किन्तु कल होकर कल वाचाल,
भरेंगे कलरव से तत्काल,
गगन, भूतल, पाताल।

फुदकने की अभिलाष
आज इनके जीवन की सार,
'आज' यदि ये कर पाए पार,
चपल कल ये अपने पर मार
मथेंगे महदाकाश।

भूल करता कवि बाल,
आज ही में जीवन का सार,
मूर्ख लेते कल का आधार,
जगत के कितने सजग विचार
खा गया कल का काल।

सामने गगन अछोर,
उड़ाता इनको निःसंकोच,
हँस रहा है मुझपर जग पोच,
गिरे ये पृथ्वी पर क्या सोच ?
उड़े तो नभ की ओर !

तीन रुबाइयाँ

मैं एक जगत को भूला
मैं भूला एक जमाना,
कितने घटना-चक्रों में
भूला मैं आना-जाना,
पर सुख-दुख की वह सीमा
मैं भूल न पाया साकी,
जीवन के बाहर जाकर
जीवन में तेरा आना।

तेरे पथ में हैं काँटे
था पहले ही से जाना,
आसान मुझे था साकी
फूलों की दुनिया पाना,
मृदु परस जगत का मुझको
आनन्द न उतना देता,
जितना तेरे काँटों से
पग-पग पर पद बिंधवाना।

सुख तो थोड़े से पाते
दुख सबके ऊपर आता,
सुख से वंचित बहुतेरे
बच कौन दुखों से पाता,
हर कलिका की किस्मत में,
जग-जाहिर, व्यर्थ बताना,

खिलना न लिखा हो लेकिन
है लिखा हुआ मुर्झाना !

—

मधुशाला

[१]

प्रियतम, तू मेरी हाला है,
मैं तेरा प्यासा प्याला,
अपने को मुझमें भरकर तू
बनता है पीनेवाला,

मैं तुझको छक छलका करता,
मस्त मुझे पी तू होता;

एक दूसरे को हम दोनों
आज परस्पर मधुशाला।

[२]

मदिरालय जाने को घर से
चलता है पीनेवाला,
'किस पथ से जाऊँ?' असमंजस
में है वह भोलाभाला,

अलग-अलग पथ बतलाते सब,
पर मैं यह बतलाता हूँ—

'राह पकड़ तू एक चलाचल,
पा जाएगा मधुशाला ।'

[३]

लाल सुरा की धार लपट-सी
कह न इसे देना ज्वाला,
फेनिल मदिरा है मत इसको
कह देना उर का छाला,

दर्द नशा है इस मदिरा का,
विगत स्मृतियाँ साकी हैं,

पीड़ा में आनन्द जिसे हो,
आए मेरी मधुशाला !

[४]

बने पुजारी प्रेमी साकी,
गंगाजल, पावन हाला,
रहे फेरता अविरत गति से
मधु के प्यालों की माला,

'और लिए जा, और पिए जा'--
इसी मंत्र का जाप करे,

मैं शिव की प्रतिमा बन बैठूं,
मन्दिर हो यह मधुशाला।

[५]

बजी न मन्दिर में घड़ियाली,
चढ़ी न प्रतिमा पर माला,
बैठा अपने भवन मुअज्जिन
देकर मस्जिद में ताला,

लुटे खजाने नरपतियों के,
गिरीं गढ़ों की दीवारें,

रहें मुबारक पीनेवाले,
खुली रही यह मधुशाला।

[६]

एक बरस में एक बार ही
जगती होली की ज्वाला,
एक बार ही लगती बाजी,
जलती दीपों की माला;

दुनियावालो, किन्तु, किसी दिन
आ मदिरालय में देखो,

दिन को होली, रात दिवाली,
रोज मनाती मधुशाला !

[७]

बजी नफीरी और नमाजी
भूल गया अल्लाताला,
गाज गिरी, पर ध्यान-सुरा में
मग्न रहा पीनेवाला;

शेख, बुरा मत मानो इसको,
साफ कहूँ तो, मस्जिद को

अभी युगों तक सिखलाएगी
ध्यान लगाना मधुशाला !

[८]

मुसलमान औ' हिन्दू हैं दो
एक, मगर, उनका प्याला,
एक, मगर, उनका मदिरालय,
एक, मगर, उनकी हाला,

दोनों रहते एक न जब तक
मस्जिद-मन्दिर में जाते,

लड़वाते हैं मस्जिद-मन्दिर,
मेल कराती मधुशाला!

[९]

सुमुखि, तुम्हारा सुन्दर मुख ही
माणिक मदिरा का प्याला,
छलक रही है जिसमें छलछल
रूप - मधुर - मादक - हाला,

मैं ही साकी बनता, मैं ही
पीनेवाला बनता हूँ;

जहाँ कहीं मिल बैठे हम-तुम
वहीं गई हो मधुशाला!

[१०]

छोटे-से जीवन में कितना
प्यार करूँ, पी लूँ हाला,
आने के ही साथ जगत में
कहलाया, 'जाने वाला',

स्वागत के ही साथ विदा की
होती देखी तैयारी,

बन्द लगी होने खुलते ही
मेरी जीवन - मधुशाला !

[११]

करले, करले कंजूसी तू
मुझको देने में हाला,
देले, देले तू मुझको बस
यह टूटा-फूटा प्याला,

मैं तो सब्र इसी पर करला,
तू पीछे पछताएगा,

जब न रहूँगा मैं तब मेरी
याद करेगी मधुशाला।

[१२]

ध्यान मान का, अपमानों का
छोड़ दिया, जब पी हाला,
गौरव भूला, आया कर में
जब से मिट्टी का प्याला

साकी की अन्दाजभरी
झिड़की में क्या अपमान धरा,

दुनिया भर की ठोकर खाकर
पाईं मैंने मधुशाला !

[१३]

गिरती जाती है दिन प्रति दिन,
प्रणयिनी, प्राणों की हाला,
भग्न हुआ जाता दिन प्रति दिन,
सुभगे, मेरा तन-प्याला,

रूठ रहा है मुझसे, रूपसि,
दिन-दिन यौवन का साकी,

सूख रही है दिन-दिन, सुन्दरि,
मेरी जीवन - मधुशाला ।

[१४]

यम आएगा साकी बनकर
साथ लिए काली हाला,
पी न होश में फिर आएगा
सुरा-विसुध यह मतवाला,

यह अन्तिम बेहोशी, अन्तिम
साकी, अन्तिम प्याला है;

पथिक, प्यार से पीना इसको,
फिर न मिलेगी मधुशाला।

[१५]

तन-प्याले से लगे सूखने,
संगिनि, जब जीवन-हाला,
पात्र गरल का ले जब अन्तिम
साकी हो आनेवाला,

हाथ परस भूले प्याले का,
स्वाद-सुरा जिह्वा भूले,

कानों में तुम कहती रहना
मधुकण, प्याला, मधुशाला!

[१६]

मेरे अधरों पर हो अन्तिम
वस्तु न तुलसीदल, प्याला,
मेरी जिह्वा पर हो अन्तिम
वस्तु न गंगाजल, हाला,

मेरे शव के पीछे चलने-
वालो, याद इसे रखना--
'राम नाम है सत्य' न कहना,
कहना 'सच्ची मधुशाला' !

[१७]

मेरे शव पर वह रोए, हो
जिसके आँसू में हाला,
आह भरे वह, जो हो सुरभित
मदिरा पीकर मतवाला,

दें मुझको वे कंधा, जिनके
पद मद-डगमग होते हों,
और जलूं उस ठौर जहाँ पर
कभी रही हो मधुशाला !

[१८]

और चिता पर जाय उँडेला
पात्र न घृत का, पर प्याला,
घंट बँधे अंगूर लता में
किन्तु न जल हो, पर हाला,

प्राण प्रिये, यदि श्राद्ध करो तुम
मेरा तो ऐसे करना—

पीनेवालों को बुलवाकर,
खुलवा देना मधुशाला !

[१९]

जो हाला मैं चाह रहा था,
वह न मिली मुझको हाला,
जो प्याला मैं माँग रहा था,
वह न मिला मुझको प्याला,

जिस साकी के पीछे मैं था,
दीवाना, न मिला साकी,

जिसके पीछे था मैं पागल,
हा, न मिली वह मधुशाला !

[२०]

कभी निराशा का तम घिरता
छिप जाता मधु का प्याला,
छिप जाती मदिरा की आभा,
छिप जाती साकीबाला,

कभी उजाला आशा करके
प्याला फिर चमका जाती,

आँखमिचौनी खेल रही है
मुझसे मेरी मधुशाला।

[२१]

मिले न पर ललचा-ललचा क्यों
आकुल करती है हाला,
मिले न पर तरसा-तरसाकर
क्यों तड़पाता है प्याला,

हाय, नियति की विषम लेखनी
मस्तक पर यह खोद गई—

'दूर रहेगी मधु की धारा,
पास रहेगी मधुशाला!'

[२२]

किस्मत में था खाली खप्पर,
खोज रहा था मैं प्याला,
ढूंढ़ रहा था मैं मृगनयनी,
किस्मत में थी मृगछाला,

किसने अपना भाग्य समझने
में मुझ-सा धोखा खाया,

किस्मत में था अवघट मरघट,
ढूंढ़ रहा था मधुशाला !

[२३]

उस प्याले से प्यार मुझे जो
दूर हथेली से प्याला,
उस हाला से चाव मुझे जो
दूर अधर से है हाला;

प्यार नहीं पा जाने में है,
पाने के अरमानों में !

पा जाता तब, हाय, न इतनी
प्यारी लगती मधुशाला ।

[२४]

जिसने मुझको प्यासा रक्खा,
बनी रहे वह भी हाला,
जिसने जीवन भर दौड़ाया,
बना रहे वह भी प्याला;

मतवालों की जिह्वा से हैं
कभी निकलते शाप नहीं,

दुखी बनाया जिसने मुझको,
सुखी रहे वह मधुशाला !

[२५]

क्या मुझको आवश्यकता है
साकी से माँगूँ हाला,
क्या मुझको आवश्यकता है
साकी से चाहूँ प्याला,

पीकर मदिरा मस्त हुआ तो
प्यार किया क्या मदिरा से !

मैं तो पागल हो उठता हूँ
सुन लेता यदि मधुशाला।

[२६]

छोड़ा मैंने पंथ-मतों को
तब कहलाया मतवाला,
चली सुरा मेरा पग धोने
तोड़ा मैंने जब प्याला,
अब मानी मधुशाला मेरे
पीछे-पीछे फिरती है।
क्या कारण? अब छोड़ दिया है
मैंने जाना मधुशाला।

[२७]

कितनी आई और गई पी
इस मदिरालय में हाला,
अब तक टूट चुकी है कितने
मादक प्यालों की माला,
कितने साकी अपना-अपना
काम खतम कर दूर हुए,
कितने पीने वाले आए
किन्तु वही है मधुशाला।

[२८]

दर-दर घूम रहा था तब मैं
चिल्लाता—हाला ! हाला !
मुझे न मिलता था मदिरालय,
मुझे न मिलता था प्याला;

मिलन हुआ पर नहीं मिलन सुख
लिखा हुआ था किस्मत में

मैं अब जमकर बैठ गया हूँ,
घूम रही है मधुशाला !

[२९]

मैं मदिरालय के अन्दर हूँ,
मेरे हाथों में प्याला,
प्याले में मदिरालय बिम्बित
करनेवाली है हाला;

इस उधेड़-बुन में ही मेरा
सारा जीवन बीत गया—

मैं मधुशाला के अन्दर या
मेरे अन्दर मधुशाला !

[३०]

वह हाला, कर शान्त सके जो
मेरे अन्तर की ज्वाला,
जिसमें मैं बिम्बित-प्रतिबिम्बित
प्रति पल, वह मेरा प्याला,

मधुशाला वह नहीं जहाँ पर
मदिरा बेची जाती है,

भेंट जहाँ मस्ती की मिलती
मेरी तो वह मधुशाला।

[३१]

कहाँ गया वह स्वर्गिक साकी,
कहाँ गई सुरभित हाला,
कहाँ गया स्वप्निल मदिरालय,
कहाँ गया स्वर्णिम प्याला!

पीनेवालों ने मदिरा का
मूल्य, हाय, कब पहचाना?

फूट चुका जब मधु का प्याला,
टूट चुकी जब मधुशाला।

[३२]

अपने युग में सबको अनुपम
ज्ञात हुई अपनी हाला,
अपने युग में सबको अद्भुत
ज्ञात हुआ अपना प्याला,

फिर भी वृद्धों से जब पूछा
एक यही उत्तर पाया—

अब न रहे वे पीनेवाले,
अब न रही वह मधुशाला !

[३३]

जितनी दिल की गहराई हो
उतना गहरा है प्याला,
जितनी मन की मादकता हो
उतनी मादक है हाला,

जितनी उर की भावुकता हो
उतना सुन्दर साकी है,

जितना ही जो रसिक, उसे है
उतनी रसमय मधुशाला ।

[३४]

मेरी हाला में सबने
पाई अपनी-अपनी हाला,
मेरे प्याले में सबने
पाया, अपना-अपना प्याला,

मेरे, साकी में सबने
अपना प्यारा साकी देखा

जिसकी जैसी रुचि थी उसने
वैसी देखी मधुशाला ।

[३५]

कुचल हसरतें कितनी अपनी,
हाय, बना पाया हाला,
कितने अरमानों को करके
खाक बना पाया प्याला,

पी पीनेवाले चल देंगे
हाय, न कोई जानेगा—

कितने मन के महल ढहे तब
खड़ी हुई यह मधुशाला !

मधुबाला

[१]

में मधुवाला मधुशाला की,
मैं मधुशाला की मधुवाला !
मैं मधु-विक्रेता की प्यारी,
मधु के घट मुझपर बलिहारी,
प्यालों की मैं सुषमा सारी,
मेरा रुख देखा करती है
मधु-प्यासे नयनों की माला !
मैं मधुशाला की मधुवाला !

[२]

इस नीले अञ्चल की छाया
में जग-ज्वाला का झुलसाया
आकर शीतल करता काया,
मधु-मरहम का मैं लेपन कर
अच्छा करती उर का छाला ।
मैं मधुशाला की मधुवाला !

[३]

मधुघट ले जब करती नर्तन,
मेरे नूपुर की छूम-छनन
में लय होता जग का क्रंदन,
झूमा करता मानव-जीवन
का क्षण-क्षण बनकर मतवाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

[४]

मैं इस आँगन की आकर्षण,
मधु से सिंचित मेरी चितवन,
मेरी वाणी में मधु के कण,
मदमत्त बनाया मैं करती,
यश लूटा करती मधुशाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

[५]

था एक समय, थी मधुशाला,
था मिट्टी का घट, था प्याला,
थी किन्तु नहीं साकीबाला,
था बैठा ठाला विक्रेता
दे बन्द कपाटों पर ताला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

[६]

तब इस घर में था तम छाया,
था भय छाया, था भ्रम छाया,
था मातम छाया, गम छाया,
ऊषा का दीप लिए सिर पर
मैं आई करती उजियाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

[७]

सोने की मधुशाला चमकी,
माणिक द्युति से मदिरा दमकी,
मधुगंध दिशाओं में गमकी,
चल पड़ा लिए कर में प्याला
प्रत्येक सुरा पीनेवाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला!

[८]

थे मदिरा के मृत-मूक घड़े,
थे मूर्ति सदृश मधुपात्र खड़े,
थे जड़वत प्याले भूमि पड़े,
जादू के हाथों से छूकर
मैंने इनमें जीवन डाला!
मैं मधुशाला की मधुबाला!

[९]

मुझको छूकर मधुघट छलके,
प्याले मधु पीने को ललके,
मालिक जागा मलकर पलकें,
अँगड़ाई लेकर उठ बैठी
चिर सुप्त, विमूर्च्छित मधुशाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला !

[१०]

प्यासे आए, मैंने आँका,
वातायन से मैंने झाँका,
पीनेवालों का दल बाँका
उत्कंठित स्वर से बोल उठा,
'कर दे पागल, भर दे प्याला !'
मैं मधुशाला की मधुबाला !

[११]

खुल द्वार गए मदिरालय के,
नारे लगते मेरी जय के,
मिट चिह्न गए चिन्ता-भय के,
हर ओर मचा है शोर यही,
'ला-ला मदिरा, मदिरा ला-ला !'
मैं मधुशाला की मधुबाला !

[१२]

हर एक तृप्ति का दास यहाँ,
पर एक बात है खास यहाँ,
पीने से बढ़ती प्यास यहाँ,
सौभाग्य, मगर, मेरा देखो,
देने से बढ़ती है हाला !
मैं मधुशाला की मधुबाला !

[१३]

चाहे जितनी मैं दूँ हाला,
चाहे जितना तू पी प्याला,
चाहे जितना बन मतवाला,
सुन, भेद बताती हूँ अन्तिम--
यह शान्त नहीं होगी ज्वाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला !

[१४]

मधु कौन यहाँ पीने आता,
है किसका प्यालों से नाता,
जग देख मुझे है मदमाता,
जिसके चिर तंद्रिल नयनों पर
तनती मैं स्वप्नों का जाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला !

[१५]

यह स्वप्न-विनिर्मित मधुशाला,
यह स्वप्न-रचित मधु का प्याला,
स्वप्निल तृष्णा, स्वप्निल हाला,
स्वप्नों की दुनिया में भूला
फिरता मानव भोलाभाला !
मैं मधुशाला की मधुबाला !

———

प्याला

[१]

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन——मेरा परिचय !

कल काल-रात्रि के अन्धकार
में थी मेरी सत्ता विलीन,
इस मूर्तिमान जग में महान
था मैं विलुप्त कल रूप-हीन,
कल मादकता की भरी नींद
थी जड़ता से ले रही होड़,
किन सरस करों का परस आज
करता जाग्रत जीवन नवीन ?
मिट्टी से मधु का पात्र बनूं——
किस कुंभकार का यह निश्चय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन——मेरा परिचय !

[२]

भ्रम भूमि रही थी जन्म-काल,
था भ्रमित हो रहा आसमान,
उस कलावान का कुछ रहस्य
होता फिर कैसे भासमान !
जब खुली आँख, तब हुआ ज्ञात,
थिर है सब मेरे आस-पास,
समझा था सब को भ्रमित, किन्तु
भ्रम स्वयं रहा था मैं अजान;
भ्रम से ही जो उत्पन्न हुआ,
क्या ज्ञान करेगा वह संचय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन मेरा परिचय !

[३]

जो रस लेकर आया भू पर
जीवन-आतप ले गया छीन,
खो गया पूर्व गुण, रंग, रूप
हो जग की ज्वाला के अधीन,
मैं चिल्लाया, 'क्यों ले मेरी
मृदुता करतीं मुझको कठोर ?'
लपटें बोलीं, 'चुप, बजा-ठोंक
लेगी तुझको जगती प्रवीण।'

यह लो, मीना बाजार लगा,
होता है मेरा क्रय-विक्रय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

[४]

मुझको न सके ले धन कुबेर
दिखलाकर अपना ठाट-बाट,
मुझको न सके ले नृपति मोल
दे माल-खजाना, राज-पाट,
अमरों ने अमृत दिखलाया,
दिखलाया अपना अमर लोक,
ठुकराया मैंने दोनों को
रखकर अपना उन्नत ललाट,
बिक, मगर, गया मैं मोल बिना
जब आया मानव सरस-हृदय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

[५]

बस एक बार पूछा जाता
यदि अमृत से पड़ता पाला,
यदि पात्र हलाहल का बनता,
बस एक बार जाता ढाला,

चिर जीवन औ' चिर मृत्यु जहाँ
लघु जीवन की चिर-प्यास कहाँ !
फिर-फिर जो होठों तक जाता
वह तो बस मदिरा का प्याला;
मेरा घर है अरमानों से
परिपूर्ण जगत का मदिरालय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

[६]

मैं सखी सुराही का साथी,
सहचर मधुबाला का ललाम,
अपने मानस की मस्ती से
उफनाया करता आठ याम,
कल क्रूर काल के गालों में
जाना होगा—इस कारण ही
कुछ और बढ़ा दी है मैंने
अपने जीवन की धूमधाम;
इन मेरी उल्टी चालों पर
संसार खड़ा करता विस्मय ।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

[७]

मेरे पथ में आ आकर के
तू पूछ रहा है बार-बार,
'क्यों तू दुनिया के लोगों में
करता है मदिरा का प्रचार ?'
मैं वाद-विवाद करूँ तुझसे
अवकाश कहाँ इतना मुझको,
'आनन्द करो'—यह व्यंग-भरी
है किसी दग्ध-उर की पुकार;
कुछ आग बुझाने को पीते
ये भी, कर मत इन पर संशय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

[८]

मैं देख चुका जा मस्जिद में
झुक-झुक मोमिन पढ़ते नमाज,
पर अपनी इस मधुशाला में
पीता दीवानों का समाज;
वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म
कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत !
कब कंचन मस्जिद पर बरसा ?
कब मदिरालय पर गिरी गाज ?

यह चिर अनादि से प्रश्न उठा,
मैं आज करूँगा क्या निर्णय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

[९]

सुनकर आया हूँ मन्दिर में
रटते हरिजन थे राम-राम,
पर अपनी इस मधुशाला में
जपते मतवाले जाम-जाम,
पंडित मदिरालय से रूठा,
मैं कैसे मन्दिर से रूठूं,
मैं फर्क बाहरी क्यों देखूं,
मुझको मस्ती से महज काम।
भय-भ्रान्ति-भरे जग में दोनों
मन को बहलाने के अभिनय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

[१०]

संसृति की नाटक शाला में
है पड़ा तुझे बनना ज्ञानी,
है पड़ा मुझे बनना प्याला,
होना मदिरा का अभिमानी,

संघर्ष यहाँ किसका किससे,
यह तो सब खेल-तमाशा है,
वह देख, यवनिका गिरती है,
समझा कुछ अपनी नादानी !
छिप जाएँगे हम दोनों ही
लेकर अपने-अपने आशय !
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय!

[११]

पल में मृत पीनेवाले के
कर से गिर भू पर आऊँगा,
था निर्मित मैं जिस मिट्टी से
उस मिट्टी में मिल जाऊँगा;
अधिकार नहीं जिन बातों पर,
उन बातों की चिन्ता करके
अब तक जग ने क्या पाया है,
मैं कर चर्चा क्या पाऊँगा ?
मुझको अपना ही जन्म-निधन
है सृष्टि प्रथम, है अन्तिम लय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन—मेरा परिचय !

—

इस पार—उस पार

[१]

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

यह चाँद उदित होकर नभ में
कुछ ताप मिटाता जीवन का,
लहरा-लहरा यह शाखाएँ
कुछ शोक भुला देतीं मन का,
कल मुर्झानेवाली कलियाँ
हँसकर कहती हैं मग्न रहो,
बुलबुल तरु की फुनगी पर से
संदेश सुनाती यौवन का,
तुम देकर मदिरा के प्याले
मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का
उपचार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

[२]

जग में रस की नदियाँ बहतीं,
रसना दो बूंदें पाती है,
जीवन की झिलमिल-सी झाँकी
नयनों के आगे आती है,
स्वर-तालमयी वीणा बजती,
मिलती है बस झंकार मुझे,
मेरे सुमनों की गंध कहीं
यह वायु उड़ा ले जाती है!
ऐसा सुनता, उस पार, प्रिये,
ये साधन भी छिन जाएँगे;
तब मानव की चेतनता का
आधार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!

[३]

प्याला है, पर पी पाएँगे,
है ज्ञात नहीं इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है
असमर्थ बना कितना हमको!
कहनेवाले, पर, कहते हैं,
हम कर्मों में स्वाधीन सदा,

करनेवालों की परवशता
है ज्ञात किसे, जितनी हमको ?
कह तो सकते हैं, कहकर ही
कुछ दिल हल्का कर लेते हैं;
उस पार अभागे मानव का
अधिकार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

[४]

कुछ भी न किया था जब उसका,
उसने पथ में काँटे बोए,
वे भार दिए धर कंधों पर,
जो रो-रोकर हमने ढोए,
महलों के स्वप्नों के भीतर
जर्जर खँडहर का सत्य भरा !
उर म ऐसी हलचल भर दी,
दो रात न हम सुख से सोए !
अब तो हम अपने जीवन भर
उस क्रूर-कठिन को कोस चुके,
उस पार नियति का मानव से
व्यवहार न जाने क्या होगा !

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

[५]

संसृति के जीवन में, सुभगे !
ऐसी भी घड़ियाँ आएँगी,
जब दिनकर की तमहर किरणें
तम के अन्दर छिप जाएँगी,
जब निज प्रियतम का शव रजनी
तम की चादर से ढक देगी,
तब रवि-शशि-पोषित यह पृथिवी
कितने दिन खैर मनाएगी !
जब इस लंबे-चौड़े जग का
अस्तित्व न रहने पाएगा,
तब तेरा-मेरा नन्हा-सा
संसार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो;
उस पार न जाने क्या होगा !

[६]

ऐसा चिर पतझड़ आएगा,
कोयल न कुहुक फिर पाएगी,

बुलबुल न अंधेरे में गा-गा
जीवन की ज्योति जगायगी,
अगणित मृदु-नव पल्लव के स्वर
'मर-मर' न सुने फिर जाएँगे,
अलि-अवली कलि-दल पर गुंजन
करने के हेतु न आएगी;
जब इतनी रसमय ध्वनियों का
अवसान, प्रिये, हो जाएगा,
तब शुष्क हमारे कंठों का
उद्‌गार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

[७]

सुन काल प्रबल का गुरु गर्जन
निर्झरिणी भूलेगी नर्तन,
निर्झर भूलेगा निज 'टल-मल',
सरिता, अपना 'कल-कल' गायन,
वह गायक-नायक सिन्धु कहीं,
चुप हो छिप जाना चाहेगा !
मुंह खोल खड़े रह जाएँगे
गंधर्व, अप्सरा, किन्नरगण !

संगीत सजीव हुआ जिनमें
जब मौन वही हो जाएँगे,
तब, प्राण, तुम्हारी तंत्री का
जड़ तार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

[८]

उतरे इन आँखों के आगे
जो हार चमेली ने पहने,
वह छीन रहा, देखो, माली
सुकुमार लताओं के गहने,
दो दिन में खींची जाएगी
ऊषा की साड़ी सिन्दूरी,
पट इन्द्रधनुप का सतरंगा
पाएगा कितने दिन रहने !
जब मूर्तिमती सत्ताओं की
शोभा-सुषमा लुट जाएगी,
तब कवि के कल्पित स्वप्नों का
शृङ्गार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

[९]

दृग देख जहाँ तक पाते हैं,
तम का सागर लहराता है,
फिर भी उस पार खड़ा कोई
हम सबको खींच बुलाता है !
मैं आज चला, तुम आओगी
कल, परसों, सब संगी-साथी;
दुनिया रोती-धोती रहती
जिसको जाना है, जाता है।
मेरा तो होता मन डगमग
तट पर के ही हलकोरों से !
जब मैं एकाकी पहुँचूंगा
मँझधार, न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा !

———

पाँच पुकार

[१]

गूंजी मदिरालय भर में
लो, 'पियो, पियो' की बोली !
संकेत किया यह किसने,
यह किसकी भौंहें घूमीं ?
सहसा मधुबालाओं ने
मदभरी सुराही चूमी;
फिर चलीं इन्हें सब लेकर,
होकर प्रतिबिम्बित इनमें,
चेतन का कहना ही क्या,
जड़ दीवारें भी झूमीं;
ज्यों ही सब ने कलि-मुख की
मृदु अधर-पखुरियाँ खोलीं,
गूंजी मदिरालय भर में
लो, 'पियो, पियो' की बोली !

[२]

जिस अमृतमय वाणी से
जड़ में जीवन जग जाता,
रुकता सुनकर वह कैसे
रसिकों का दल मदमाता;
आँखों के आगे पाकर
अपने जीवन का सपना;
हर एक उसे छूने को
आया निज कर फैलाता;
पा सत्य कलोल उठी कर
मधु के प्यासों की टोली,
गूंजी मदिरालय भर में
लो, 'बढ़ो, बढ़ो' की बोली!

[३]

सारी साधें जीवन की
अधरों में आज समाई,
सुख, शान्ति जगत की सारी
छनकर मदिरा में आई,
इच्छित स्वर्गों की प्रतिमा
साकार हुई, सखि, तुम हो;
अब ध्येय विसुधि, विस्मृति है,
है मुक्ति यही सुखदाई,

पल भर की चेतनता भी
अब सह्य नहीं, ओ भोली !
गूंजी मदिरालय भर में
लो, 'भरो, भरो' की बोली !

[४]

मधुघट कंधों से उतरे,
आशा से आँखें चमकीं,
छल-छल कह माणिक मदिरा
प्यालों के अन्दर दमकी,
दानी मधुबालाओं ने
ली झुका सुराही अपनी,
'आरम्भ करो' कहती-सी
मधुगंध चतुर्दिक गमकी,
आशीष-वचन कहने को
मधुपों की जिह्वा डोली,
गूंजी मदिरालय भर में
लो, 'जियो, जियो' की बोली !

[५]

दो दौर न चल पाए! थे
इस तृष्णा के आँगन में,
डूबा मदिरालय सारा
मतवालों के क्रंदन में !

यमदूत द्वार पर आया
ले चलने का परवाना !
गिर-गिर टूटे घट-प्याले,
बुझ दीप गए सब क्षण में !
सब चले किए सिर नीचे
ले अरमानों की झोली !
गूंजी मदिरालय भर में
लो, 'चलो, चलो' की बोली !

पगध्वनि

[१]

पहचानी वह पगध्वनि मेरी,
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !
नन्दन वन में उगनेवाली
मेंहदी जिन तलवों की लाली
बनकर भू पर आई, आली !
मैं उन तलवों से चिर परिचित,
मैं उन तलवों का चिर ज्ञानी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[२]

ऊषा ले अपनी अरुणाई,
ले कर-किरणों की चतुराई,
जिनमें जावक रचने आई,
मैं उन चरणों का चिर प्रेमी,
मैं उन चरणों का चिर ध्यानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[३]

उन मृदु चरणों का चुंबन कर
ऊसर भी हो उठता उर्वर,
तृण-कलि-कुसुमों से जाता भर
मरुथल मधुवन बन लहराते,
पाषाण पिघल होते पानी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[४]

उन चरणों की मंजुल उँगली
पर नख-नक्षत्रों की अवली,
जीवन के पथ की ज्योति भली,
जिसका अवलंबन कर जग ने
सुख-सुषमा की नगरी जानी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[५]

उन पद-पद्मों के प्रभ रजकण
का अंजित कर मंत्रित अंजन
खुलते कवि के चिर अन्ध नयन !
तम से आकर उर से मिलती
स्वप्नों की दुनिया की रानी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[६]

उन सुन्दर चरणों का अर्चन
करते आँसू से सिंधु-नयन !
पद-रेखा में उच्छ्वास पवन
देखा करता अंकित अपनी
सौभाग्य सुरेखा कल्याणी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[७]

उन चल चरणों की कल छम-छम
से ही था निकला नाद प्रथम,
गति से, मादक तालों का क्रम,
संगीत, जिसे सारे जग ने
अपने सुख की भाषा मानी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[८]

हो शान्त, जगत के कोलाहल !
रुक जा, री जीवन की हलचल !
मैं दूर पड़ा सुन लूँ दो पल,
संदेश नया जो लाई है,
यह चाल किसी की मस्तानी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[९]

किसके तमपूर्ण प्रहर भागे ?
किसके चिर सोए दिन जागे ?
सुख-स्वर्ग हुआ किसके आगे ?
होगी किसके कंपित कर से
इन शुभ चरणों की अगवानी ?
वह पगध्वनि मेरी पहचानी ?

[१०]

बढ़ता जाता घुंघरू का रव,
क्या यह भी हो सकता संभव ?
यह जीवन का अनुभव अभिनव !
पदचाप शीघ्र, पद-राग तीव्र !
स्वागत को उठ, रे कवि मानी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[११]

ध्वनि पास चली मेरे आती,
सब अंग शिथिल, पुलकित छाती,
लो, गिरतीं पलकें मदमाती,
पग को परिरंभण करने की,
पर, इन युग बाहों ने ठानी।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[१२]

रव गूँजा भू पर, अंबर में,
सर में, सरिता में, सागर में,
प्रत्येक श्वास में, प्रति स्वर में,
किस-किस का आश्रय ले फैलें,
मेरे हाथों की हैरानी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[१३]

ये ढूंढ़ रहे ध्वनि का उद्गम,
मंजीर-मुखर-युत पद निर्मम,
है ठौर सभी जिनकी ध्वनि सम,
इनको पाने का यत्न वृथा,
श्रम करना केवल नादानी ।
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[१४]

ये कर नभ-जल-थल में भटके,
आकर मेरे उर पर अटके,
जो पग द्वय थे अन्दर घट के,
ये ढूंढ़ रहे उनको बाहर
ये युग कर मेरे अज्ञानी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

[९५]

उर के ही मधुर अभाव चरण
बन करते स्मृति-पट पर नर्तन,
मुखरित होता रहता बन-बन
मैं ही इन चरणों में नूपुर,
नूपुर-ध्वनि मेरी ही वाणी !
वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

मधु कलश

मधु कलश

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[१]

सर में जीवन है, इससे ही
वह लहराता रहता प्रति पल,
सरिता में जीवन, इससे ही
वह गाती जाती है कल-कल,

निर्झर में जीवन, इससे ही
वह झर-झर झरता रहता है,

जीवन ही देता रहता है
नद को द्रुत गति, नद को हलचल,

लहरें उठती, लहरें गिरतीं,
लहरें बढ़तीं, लहरें हटतीं,
जीवन से चंचल हैं लहरें,
जीवन से अस्थिर है सागर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[२]

नभ का जीवन प्रति रजनी में
कर उठता है जगमग-जगमग,
जलकर तारक-दल-दीपों में,
सज नीलम का प्रासाद सुभग,

दिन में पट रंग-बिरंगे औ'
सतरंगे बनकर तन ढकता,

प्रातः-सायं कलरव करता
बन चंचल-पर दल के दल खग,

प्रावृट् में विद्युत् में हँसता,
रोता बादल की बूंदों में,
करती है व्यक्त धरा जीवन,
होकर तृणमय, होकर उर्वर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[३]

मारुत का जीवन बहता है
गिरि-कानन पर करता हर-हर,
तरुवर-लतिकाओं का जीवन
कर उठता है मर्मर-मर्मर,

पल्लव का, पर बन अंबर में
उड़ जाने की इच्छा करता,

शाखाओं का, झूमा करता
दाएँ - बाएँ नीचे - ऊपर,

तृण-शिशु, जिनका हो पाया है
अबतक मुखरित कल कंठ नहीं,
दिखला देते अपना जीवन
फड़का अपने अनजान अधर ।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[४]

जल में, थल में, नभमंडल में
है जीवन की धारा बहती,
संसृति के कूल-किनारों को
प्रति क्षण सिंचित करती रहती,

इस धारा के तट पर ही है
मेरी यह सुन्दर-सी बस्ती—

सुन्दर-सी नगरी जिसको है
सब दुनिया मधुशाला कहती,

मैं हूँ इस नगरी की रानी,
इसकी देवी, इसकी प्रतिमा,
इससे मेरा संबंध अटल,
इससे मेरा संबंध अमर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर!

[५]

पल ड्योढ़ी पर, पल आँगन में,
पल छज्जों और झरोखों पर
मैं क्यों न रहूँ जब आने को
मेरे मधु के प्रेमी सुन्दर,

जब खोज किसी की हों करते
दृग दूर क्षितिज पर ओर सभी,

किस विधि से मैं गम्भीर बनूं
अपने नयनों को नीचे कर,

मरु की नीरवता का अभिनय
मैं कर ही कैसे सकती हूँ,
जब निष्कारण ही आज रहे
मुसकान-हँसी के निर्झर झर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर!

[६]

मैं थिर होकर कैसे बैठूं,
जब हो उठते हैं पांव चपल;
मैं मौन खड़ी किस भाँति रहूं,
जब हैं बज उठते पग-पायल,

जब मधुघट के आधार बने,
कर क्यों न झुकें, झूमें, घूमें,

किस भाँति रहूँ मैं मुख मूंदे,
जब उड़-उड़ जाता है अंचल,

मैं नाच रही मदिरालय में,
मैं और नहीं कुछ कर सकती,
है आज गया कोई मेरे
तन में, प्राणों में यौवन भर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[७]

भावों से ऐसा पूर्ण हृदय
बातें भी मेरी साधारण
उर से उठकर मुख तक आते-
आते बन जाती हैं गायन;

जब लौट प्रतिध्वनि आती है,
अचरज होता है तब मुझको—

हो आज गईं मधु सौरभ से
क्या जड़ दीवारें भी चेतन !

गुंजित करती मदिरालय को,
लाचार यहीं मैं करने को,
अपने से ही फूटा पड़ता
मुझमें लय-ताल-बँधा मधु स्वर ।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[८]

गिरि में न समा उन्माद सका
तब झरनों में बाहर आया,
झरनों की ही थी मादकता
जिसको सर-सरिता ने पाया,

जब सँभल सका उल्लास नहीं
नदियों से, अंबुधि को आईं,

अंबुधि की उमड़ी मस्ती को
नीरद ने भू पर बरसाया;

मलयानिल को निज सौरभ दे
मधुवन कुछ हल्का हो जाता,
मैं कर देती मदिरा वितरित
जाता उर से कुछ भार उतर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[९]

तन की क्षणभंगुर नौका पर
चढ़कर, हे यात्री, तू आया,
तूने नानाविधि नगरों को
होगा जीवन-तट पर पाया,

जड़-शुष्क उन्हें देखा होगा
रक्षित - सीमित प्राचीरों से,

इस नगरी में पाई होगी
अपने उर की स्वप्निल छाया,

है शुष्क सत्य यदि उपयोगी
तो सुखदायक है स्वप्न सरस,
सुख भी जीवन का अंश अमर,
मत जग से डर, कुछ देर ठहर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

[१०]

जीवन में दोनों आते हैं
मिट्टी के पल, सोने के क्षण,
जीवन से दोनों जाते हैं
पाने के पल, खोने के क्षण;

हम जिस क्षण में जो करते हैं
हम बाध्य वही हैं करने को,

हँसने के क्षण पाकर हँसते,
रोते हैं पा रोने के क्षण;

विस्मृति की आई है वेला,
कर, पांथ, न इसकी अवहेला,
आ, भूलें हास-रुदन दोनों
मधुमय होकर दो-चार पहर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर!

—

कवि की वासना

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

[१]

सृष्टि के प्रारम्भ में
मैंने उषा के गाल चूमे,
बाल रवि के भाग्यवाले
दीप्त भाल विशाल चूमे,

प्रथम संध्या के अरुण दृग
चूमकर मैंने सुलाए,

तारिका-कलि से सुसज्जित
नव निशा के बाल चूमे,

वायु के रसमय अधर
पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से
आज क्या अभिसार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

[२]

विगत-बाल्य वसुन्धरा के
उच्च तुंग-उरोज उभरे,
तरु उगे हरिताभ पट धर
काम के ध्वज मत्त फहरे,

चपल उच्छृंखल करों ने
जो किया उत्पात उस दिन,

है हथेली पर लिखा वह,
पढ़ भले ही विश्व हहरे,

प्यास वारिधि से बुझाकर
भी रहा अतृप्त हूँ मैं,
कामिनी के कुच-कलश से
आज कैसा प्यार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

[३]

इन्द्रधनु पर शीश धरकर
बादलों की सेज सुख पर
सो चुका हूँ नींद भर में
चंचला को बाहु में भर,

दीप रवि-शशि-तारकों ने
बाहरी कुछ केलि देखी,

देख, पर, पाया न कोई
स्वप्न वे सुकुमार सुन्दर

जो पलक पर कर निछावर
थी गई मधु यामिनी वह,
यह समाधि बनी हुई है
यह न शयनागार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

[४]

आज मिट्टी से घिरा हूँ
पर उमंगें हैं पुरानी,
सोमरस जो पी चुका है
आज उसके हाथ पानी,

होठ प्यालों पर झुके तो
थे विवश इसके लिए वे,

प्यास का व्रत धार बैठा
आज है मन, किन्तु, मानी;

मैं नहीं हूँ देह-धर्मों से
बँधा, जग, जान ले तू,
तन विकृत हो जाय लेकिन
मन सदा अविकार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

[५]

निष्परिश्रम छोड़ जिनको
मोह लेता विश्व भर को,
मानवों को, सुर-असुर को,
वृद्ध ब्रह्मा, विष्णु, हर को,

भंग कर देता तपस्या
सिद्ध, ऋषि, मुनि सत्तमों की,

वे सुमन के वाण मैंने
ही दिए थे पंचशर को;

शक्ति रख कुछ पास अपने
ही दिया यह दान मैंने,
जीत पाएगा इन्हीं से
आज क्या मन मार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

[६]

प्राण प्राणों से सकें मिल
किस तरह, दीवार है तन,
काल है घड़ियाँ न गिनता,
बेड़ियों का शब्द झन-झन,

वेद - लोकाचार प्रहरी
ताकते हर चाल मेरी,

बद्ध इस वातावरण में
क्या करे अभिलाष यौवन !

अल्पतम इच्छा यहाँ
मेरी बनी बन्दी पड़ी है,
विश्व क्रीड़ास्थल नहीं रे,
विश्व कारागार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

[७]

थी तृषा जब शीत जल की
खा लिए अंगार मैंने,
चीथड़ों से उस दिवस था
कर लिया शृङ्गार मैंने

राजसी पट पहनने की
जब हुई इच्छा प्रबल थी,

चाह-संचय में लुटाया
था भरा भंडार मैंने

वासना जब तीव्रतम थी
बन गया था संयमी मैं,
हो रही मेरी क्षुधा ही
सर्वदा आहार मेरा!

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

[८]

कल छिड़ी, होगी खतम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं, जो रहेगी
विश्व में मेरी निशानी?

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक?

वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी?

मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

पथभ्रष्ट

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में !

[१]

पार तम के दीख पड़ता
एक दीपक झिलमिलाता,
जा रहा उस ओर हूँ मैं
मत्त-मधुमय गीत गाता,

इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूँ,

जानता हूँ, क्यों जगत फिर
उँगलियाँ मुझपर उठाता—

मौन रहकर इस लहर के
साथ संगी बह रहे हैं,
एक मेरी ही उमंगें
हो उठी हैं व्यक्त स्वर में।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में।

[२]

क्यों बताऊँ पोत कितने
पार हैं इसने लगाए ?
क्यों बताऊँ वृक्ष कितने
तीर के इसने गिराए ?

उर्वरा कितनी धरा को
कर चुकी यह क्यों बताऊँ ?

क्यों बताऊँ गीत कितने
इस लहर ने हैं लिखाए

कूल पर बैठे हुए कवि से
किसी दुख की घड़ी में ?
क्या नहीं पर्याप्त इतना
जानना, गति है लहर में ?

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में !

[३]

फल-भरे तरु तोड़ डाले
शान्त मत लेकिन पवन हो,
वज्र घन चाहे गिराए
किन्तु मत सूना गगन हो,

बढ़ बहा दे बस्तियों को
पर न हो जलहीन सरिता,

हो न ऊसर देश चाहे
कंटकों का एक वन हो;

पाप की ही गैल पर
चलते हुए ये पाँव मेरे
हँस रहे हैं उन पगों पर
जो बँधे हैं आज घर में।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में!

[४]

यह नहीं, सुनता नहीं, जो
शंख की ध्वनि आ रही है,
देव-मन्दिर में जनों को
साधिकार बुला रही है,

कान में आतीं अजानें,
मस्जिदों का यह निमंत्रण,

और ही संदेश देती
किन्तु बुलबुल गा रही है;

रक्त से सींची गई है
राह मन्दिर-मस्जिदों की,
किन्तु रखना चाहता मैं
पाँव मधु-सिंचित डगर में।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में!

[५]

है न वह व्यक्तित्व मेरा
जिस तरफ मेरा कदम हो,
उस तरफ जाना जगत के
वास्ते कल से नियम हो,

औलिया-आचार्य बनने की
नहीं अभिलाष मेरी,

किसलिए संसार तुझको
देख मेरी चाल गम हो?

जो चले युग-युग चरण ध्रुव
धर मिटे पद-चिह्न उनके,
पद प्रकंपित, हाय, अंकित
क्या करेंगे दो प्रहर में!

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में!

[६]

मैं कहाँ हूँ और वह
आदर्श मधुशाला कहाँ है !
विस्मरण दे जागरण के
साथ, मधुबाला कहाँ है !

है कहाँ प्याला कि जो दे
चिर तृषा चिर तृप्ति में भी !

जो डुबा तो ले मगर दे
पार कर, हाला कहाँ है !

देख भीगे होठ मेरे
और कुछ संदेह मत कर,
रक्त मेरे ही हृदय का
है लगा मेरे अधर में !

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में !

[७]

सोचता है विश्व, कवि ने
कक्ष में बहु विधि सजाए,
मदिर-नयना यौवना को
गोद में अपनी बिठाए,

होठ से उसके विचुंबित
प्यालियों को रिक्त करते,

झूमते उन्मत्तता से
ये सुरा के गान गाए!

राग के पीछे छिपा
चीत्कार कह देगा किसी दिन,
हैं लिखे मधुगीत मैंने
हो खड़े जीवन समर में!

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में!

[८]

पाँव चलने को विवश थे
जब विवेक-विहीन था मन,
आज तो मस्तिष्क दूषित
कर चुके पथ के मलिन कण,

मैं इसीसे क्या करूँ
अच्छे-बुरे का भेद, भाई,

लौटना भी तो कठिन है
चल चुका युग एक जीवन;

हो नियति इच्छा तुम्हारी
पूर्ण, मैं चलता चलूंगा,
पथ सभी मिल एक होंगे
तम-घिरे यम के नगर में।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में!

लहरों का निमंत्रण

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[१]

रात का अन्तिम प्रहर है,
झिलमिलाते हैं सितारे,
वक्ष पर युग बाहु बाँधे
मैं खड़ा सागर किनारे,

वेग से बहता प्रभंजन
केश-पट मेरे उड़ाता,

शून्य में भरता उदधि-
उर की रहस्यमयी पुकारें;

इन पुकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में,
है प्रतिच्छायित जहाँ पर
सिन्धु का हिल्लोल-कंपन ।

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[२]

विश्व की सम्पूर्ण पीड़ा
सम्मिलित हो रो रही है,
शुष्क पृथ्वी आँसुओं से
पाँव अपने धो रही है,

इस धरा पर जो बसी दुनिया
यही अनुरूप उसके—

इस व्यथा से हो न विचलित
नींद सुख की सो रही है;

क्यों धरणि अब तक न गलकर
लीन जलनिधि में गई हो ?
देखते क्यों नेत्र कवि के
भूमि पर जड़-तुल्य जीवन ?

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[३]

जड़ जगत में वास कर भी
जड़ नहीं व्यवहार कवि का,
भावनाओं से विनिर्मित
और ही संसार कवि का,

बूंद के उच्छ्वास को भी
अनसुनी करता नहीं वह,

किस तरह होता उपेक्षा-
पात्र पारावार कवि का;

विश्व-पीड़ा से सुपरिचित
हो तरल बनने, पिघलने,
त्यागकर आया यहाँ कवि
स्वप्न-लोकों के प्रलोभन।

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

[४]

जिस तरह मरु के हृदय में
है कहीं लहरा रहा सर,
जिस तरह पावस-पवन में
है पपीहे का छिपा स्वर,

जिस तरह से अश्रु-आहों से
भरी कवि की निशा में

नींद की परियाँ बनातीं
कल्पना का लोक सुखकर,

सिन्धु के इस तीव्र हाहा-
कार ने, विश्वास मेरा,
है छिपा रक्खा कहीं पर
एक रस-परिपूर्ण गायन।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[५]

नेत्र सहसा आज मेरे
तम-पटल के पार जाकर
देखते हैं रत्न-सीपी से
बना प्रासाद सुन्दर,

है खड़ी जिसमें उषा ले
दीप कुंचित रश्मियों का,

ज्योति में जिसकी सुनहली
सिन्धु कन्याएँ मनोहर

गूढ़ अर्थों से भरी मुद्रा
बनाकर गान करतीं
और करतीं अति अलौकिक
ताल पर उन्मत्त नर्तन।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[६]

मौन हो गन्धर्व बैठे
कर श्रवण इस गान का स्वर,
वाद्य-यंत्रों पर चलाते
हैं नहीं अब हाथ किन्नर,

अप्सराओं के उठे जो,
पग उठे ही रह गए हैं,

कर्ण उत्सुक, नेत्र अपलक
साथ देवों के पुरन्दर

एक अद्भुत और अविचल
चित्र-सा है जान पड़ता,
देव-बालाएँ विमानों से
रहीं कर पुष्प-वर्षण।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

[७]

दीर्घ उर में भी जलधि के
हैं नहीं खुशियाँ समातीं,
बोल सकता कुछ न उठती
फूल बारम्बार छाती;

हर्ष रत्नागार अपना
कुछ दिखा सकता जगत को,

भावनाओं से भरी यदि
यह फफककर फूट जाती;

सिन्धु जिसपर गर्व करता
और जिसकी अर्चना को
स्वर्ग झुकता, क्यों न उसके
प्रति करे कवि अर्घ्य अर्पण।

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

[८]

आज अपने स्वप्न को मैं
सच बनाना चाहता हूँ,
दूर की इस कल्पना के
पास जाना चाहता हूँ,

चाहता हूँ तैर जाना
सामने अंबुधि पड़ा जो,

कुछ विभा उस पार की
इस पार लाना चाहता हूँ;

स्वर्ग के भी स्वप्न भू पर
देख उनसे दूर ही था,
किन्तु पाऊँगा नहीं कर
आज अपने पर नियंत्रण ।

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[९]

लौट आया यदि वहाँ से
तो यहाँ नव युग लगेगा,
नव प्रभाती गान सुनकर
भाग्य जगती का जगेगा,

शुष्क जड़ता शीघ्र बदलेगी
सरस चैतन्यता में,

यदि न पाया लौट, मुझको
लाभ जीवन का मिलेगा,

पर पहुँच ही यदि न पाया
व्यर्थ क्या प्रस्थान होगा ?
कर सकूंगा विश्व में फिर
भी नए पथ का प्रदर्शन ।

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[१०]

स्थल गया है भर पथों से
नाम कितनों के गिनाऊँ,
स्थान बाकी है कहाँ, पथ
एक अपना भी बनाऊँ ?

विश्व तो चलता रहा है
थाम राह बनी-बनाई,

किन्तु इनपर किस तरह मैं
कवि-चरण अपने बढ़ाऊँ ?

राह जल पर भी बनी है,
रूढ़ि, पर, न हुई कभी वह,
एक तिनका भी बना सकता
यहाँ पर मार्ग नूतन !

तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण !

[११]

देखता हूँ आँख के आगे
नया यह क्या तमाशा—
कर निकलकर दीर्घ जल से
हिल रहा करता मना-सा,

है हथेली-मध्य चित्रित
नीर मग्नप्राय बेड़ा !

मैं इसे पहचानता हूँ,
है नहीं क्या यह निराशा ?

हो पड़ीं उद्दाम इतनी
उर-उमंगें, अब न उनको
रोक सकता भय निराशा का,
न आशा का प्रवंचन।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

[१२]

पोत अगणित इन तरंगों ने
डुबाए मानता मैं,
पार भी पहुँचे बहुत से—
बात यह भी जानता मैं,

किन्तु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे,

पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मैं;

डूबता मैं, किन्तु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा,
हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन !

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमन्त्रण !

[१३]

आ रहीं प्राची क्षितिज से
खींचने वाली सदाएँ,
मानवों के भाग्य-निर्णायक
सितारो ! दो दुआएँ,

नाव, नाविक, फेर ले जा,
है नहीं कुछ काम इसका,

आज लहरों से उलझने को
फड़कती हैं भुजाएँ;

प्राप्त हो उस पार भी इस
पार-सा चाहे अँधेरा,
प्राप्त हो युग की उषा
चाहे लुटाती नव किरण-धन ।

तीर पर कैसे रुकूं मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

निशा निमंत्रण

[१]

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

हो जाय न पथ में रात कहीं,
मंजिल भी तो है दूर नहीं--
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है !
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे--
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है !
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

मुझसे मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चंचल ?--
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है !
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

[२]

बीत चली सन्ध्या की वेला !

धुंधली प्रति पल पड़नेवाली
एक रेख में सिमटी लाली
कहती है, समाप्त होता है सतरंगे बादल का मेला !
बीत चली सन्ध्या की वेला !

नभ में कुछ द्युतिहीन सितारे
माँग रहे हैं हाथ पसारे—
'रजनी आए, रवि किरणों से हमने है दिन भर दुख झेला !'
बीत चली सन्ध्या की वेला !

अन्तरिक्ष में आकुल-आतुर,
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़
पंथ नीड़ का खोज रहा है पिछड़ा पंछी एक—अकेला !
बीत चली सन्ध्या की वेला !

[३]

तुम तूफान समझ पाओगे ?

गीले बादल, पीले रजकण,
सूखे पत्ते, रूखे तृण घन
लेकर चलता करता 'हरहर'—इसका गान समझ पाओगे ?
तुम तूफान समझ पाओगे ?

गंध-भरा यह मंद पवन था,
लहराता इससे मधुवन था,
सहसा इसका टूट गया जो स्वप्न महान, समझ पाओगे !
तुम तूफान समझ पाओगे ?

तोड़-मरोड़ विटप-लतिकाएँ,
नोच-खसोट कुसुम-कलिकाएँ
जाता है अज्ञात दिशा को ! हटो विहंगम, उड़ जाओगे !
तुम तूफान समझ पाओगे ?

[४]

कहते हैं, तारे गाते हैं !

सन्नाटा वसुधा पर छाया,
नभ में हमने कान लगाया,
फिर भी अगणित कंठों का यह राग नहीं हम सुन पाते हैं।
कहते हैं, तारे गाते हैं !

स्वर्ग सुना करता यह गाना,
पृथ्वी ने तो बस यह जाना,
अगणित ओस-कणों में तारों के नीरव आँसू आते हैं।
कहते हैं, तारे गाते हैं !

ऊपर देव, तले मानवगण,
नभ में दोनों गायन-रोदन,
राग सदा ऊपर को उठता, आँसू नीचे झर जाते हैं!
कहते हैं, तारे गाते हैं !

[५]

साथी, सो न, कर कुछ बात !

बोलते उडगण परस्पर,
तरु दलों, में मन्द 'मरमर',
बात करतीं सरि-लहरियाँ कूल से जल-स्नात!
साथी, सो न, कर कुछ बात !

बात करते सो गया तू,
स्वप्न में फिर खो गया तू,
रह गया मैं और आधी बात, आधी रात !
साथी, सो न, कर कुछ बात !

पूर्ण करदे वह कहानी,
जो शुरू की थी सुनानी,
आदि जिसका हर निशा में, अंत चिर अज्ञात !
साथी, सो न, कर कुछ बात !

[६]

यह पपीहे की रटन है !

बादलों की घिर घटाएँ
भूमि की लेतीं बलाएँ,
खोल दिल देतीं दुआएँ—देख किस उर में जलन है ?
यह पपीहे की रटन है !

जो बहा दे, नीर आया,
आग का फिर तीर आया,
वज्र भी बेपीर आया—कब रुका इसका वचन है ?
यह पपीहे की रटन है !

यह न पानी से बुझेगी,
यह न पत्थर से दबेगी,
यह न शोलों से डरेगी यह वियोगी की लगन है !
यह पपीहे की रटन है !

[७]

रात आधी हो गई है!

जागता मैं आँख फाड़े,
हाय, सुधियों के सहारे,
जब कि दुनिया स्वप्न के जादू-भवन में खो गई है?
रात आधी हो गई है!

सुन रहा हूँ, शान्ति इतनी,
है टपकती बूंद जितनी
ओस की जिनसे द्रुमों का गात रात भिगो गई है!
रात आधी हो गई है!

दे रही कितना दिलासा,
आ झरोखे से जरा-सा
चाँदनी पिछले पहर की पास में जो सो गई है!
रात आधी हो गई है!

[८]

मैंने खेल किया जीवन से !

सत्य भवन में मेरे आया,
पर मैं उसको देख न पाया,
दूर न कर पाया मैं, साथी, सपनों का उन्माद नयन से !
मैंने खेल किया जीवन से !

मिलता था बेमोल मुझे सुख,
पर मैंने उससे फेरा मुख,
मैं खरीद बैठा पीड़ा को यौवन के चिर संचित धन से !
मैंने खेल किया जीवन से !

थे बैठे भगवान हृदय में,
देर हुई मुझको निर्णय में,
उन्हें देवता समझा जो थे कुछ भी अधिक नहीं पाहन से !
मैंने खेल किया जीवन से !

[९]

अब वे मेरे गान कहाँ हैं !

टूट गई मरकत की प्याली,
लुप्त हुई मदिरा की लाली,
मेरा व्याकुल मन बहलानेवाले अब सामान कहाँ हैं !
अब वे मेरे गान कहाँ हैं !

जगती के नीरस मरुथल पर
हँसता था मैं जिनके बल पर,
चिर वसंत-सेवित स्वप्नों के मेरे वे उद्यान कहाँ हैं !
अब वे मेरे गान कहाँ हैं !

किसपर अपना प्यार चढ़ाऊँ ?
यौवन का उद्‌गार चढ़ाऊँ ?
मेरी पूजा को सह लेनेवाले वे पाषाण कहाँ हैं !
अब वे मेरे गान कहाँ हैं !

[१०]

बीते दिन कब आनेवाले !

मेरी वाणी का मधुमय स्वर
विश्व सुनेगा कान लगाकर,
दूर गए पर मेरे उर की धड़कन को सुन पानेवाले !
बीते दिन कब आनेवाले !

विश्व करेगा मेरा आदर
हाथ बढ़ाकर, शीश नवाकर,
पर न खुलेंगे नेत्र प्रतीक्षा में जो रहते थे मतवाले !
बीते दिन कब आनेवाले !

मुझमें है देवत्व जहाँ पर,
झुक जाएगा लोक वहाँ पर,
पर न मिलेंगे मेरी दुर्बलता को अब दुलरानेवाले !
बीते दिन कब आनेवाले !

[११]

मधुप, नहीं अब मधुवन तेरा !

तेरे साथ खिलीं जो कलियाँ,
रूप-रंगमय कुसुमावलियाँ,
वे कबकी धरती में सोईं होगा उनका फिर न सबेरा !
मधुप, नहीं अब मधुवन तेरा !

नूतन मुकुलित कलिकाओं पर,
उपवन की नव आशाओं -पर
नहीं सोहता, पागल, तेरा दुर्बल-दीन-अमंगल फेरा !
मधुप, नहीं अब मधुवन तेरा !

जहाँ प्यार बरसा था तुझपर,
वहाँ दया की भिक्षा लेकर,
जीने की लज्जा को कैसे सहता है, मानी, मन तेरा !
मधुप, नहीं अब मधुवन तेरा !

[१२]

आओ, हम पथ से हट जाएँ !

युवती और युवक मदमाते
उत्सव आज मनाने आते,
लिए नयन में स्वप्न, बचन में हर्ष, हृदय में अभिलाषाएँ !
आओ, हम पथ से हट जाएँ !

इनकी इन मधुमय घड़ियों में,
हास-लास की फुलझड़ियों में
हम न अमंगल शब्द निकालें, हम न अमंगल अश्रु बहाएँ !
आओ, हम पथ से हट जाएँ !

यदि इनका सुख सपना टूटे,
काल इन्हें भी हम-सा लूटे,
धैर्य बँधाएँ इनके उर को हम पथिकों की करुण कथाएँ !
आओ, हम पथ से हट जाएँ !

[१३]

क्या कंकड़-पत्थर चुन लाऊँ ?

यौवन के उजड़े प्रदेश के
इस उर के ध्वंसावशेष के
भग्न शिला-खंडों से क्या मैं फिर आशा की भीत उठाऊँ ?
क्या कंकड़-पत्थर चुन लाऊँ ?

स्वप्नों के इस रंगमहल में
हँसूँ निशा की चहल-पहल में ?
या इस खँडहर की समाधि पर बैठ रुदन को गीत बनाऊँ ?
क्या कंकड़-पत्थर चुन लाऊँ ?

इसमें करुणस्मृतियाँ सोईं,
इसमें मेरी निधियाँ सोईं,
इसका नाम-निशान मिटाऊँ या मैं इस पर दीप जलाऊँ ?
क्या कंकड़-पत्थर चुन लाऊँ ?

[१४]

क्या भूलूं, क्या याद करूँ मैं !

अगणित उन्मादों के क्षण हैं
अगणित अवसादों के क्षण हैं,
रजनी की सूनी घड़ियों को किन-किन से आबाद करूँ मैं !
क्या भूलूं, क्या याद करूँ मैं !

याद सुखों की आँसू लाती,
दुख की, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूं जब अपने से अपने दिन बर्बाद करूँ मैं !
क्या भूलूं, क्या याद करूँ मैं !

दोनों करके पछताता हूँ,
सोच नहीं, पर, मैं पाता हूँ,
सुधियों के बंधन से कैसे अपने को आजाद करूँ मैं !
क्या भूलूं, क्या याद करूँ मैं !

[१५]

तू क्यों बैठ गया है पथ पर ?

ध्येय न हो, पर है मग आगे,
बस धरता चल तू पग आगे,
बैठ न चलनेवालों के दल में तू आज तमाशा बनकर !
तू क्यों बैठ गया है पथ पर ?

मानव का इतिहास रहेगा
कहीं, पुकार-पुकार कहेगा—
निश्चय था गिर मर जाएगा चलता किन्तु रहा-जीवन भर !
तू क्यों बैठ गया है पथ पर ?

जीवित भी तू आज मरा-सा
पर मेरी तो यह अभिलाषा—
चिता-निकट भी पहुँच सकूँ मैं अपने पैरों-पैरों चलकर !
तू क्यों बैठ गया है पथ पर ?

[१६]

जय हो, हे संसार, तुम्हारी !

जहाँ झुके हम वहाँ तनो तुम,
जहाँ मिटे हम वहाँ बनो तुम,
तुम जीतो उस ठौर जहाँ पर हमने बाजी हारी ?
जय हो, हे संसार, तुम्हारी !

मानव का सच हो सपना सब,
हमें चाहिए और न कुछ अब,
याद रहे हमको बस इतना—मानव जाति हमारी !
जय हो, हे संसार, तुम्हारी !

अनायास निकली यह वाणी,
यह निश्चय होगी कल्याणी,
जग को शुभाशीष देने के हम दुखिया अधिकारी !
जय हो, हे संसार, तुम्हारी !

———

एकांत संगीत

[१]

अब मत मेरा निर्माण करो !

तुमने न बना मुझको पाया,
युग-युग बीते, मैं घबराया;
भूलो मेरी विह्वलता को, निज लज्जा का तो ध्यान करो !
अब मत मेरा निर्माण करो !

इस चक्की पर खाते चक्कर
मेरा तन-मन-जीवन जर्जर;
हे कुंभकार, मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो !
अब मत मेरा निर्माण करो !

कहने की सीमा होती है,
सहने की सीमा होती है;
कुछ मेरे भी वश में, मेरा कुछ सोच-समझ अपमान करो !
अब मत मेरा निर्माण करो !

[२]

कोई गाता, मैं सो जाता !

संसृति के विस्तृत सागर पर
सपनों की नौका के अन्दर
सुख-दुख की लहरों पर उठ-गिर बहता जाता मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता !

आँखों में भरकर प्यार अमर,
आशीष हथेली में भरकर
कोई मेरा सिर गोदी में रख, सहलाता मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता !

मेरे जीवन का खारा जल,
मेरे जीवन का हालाहल
कोई अपने स्वर में मधुमय कर बरसाता, मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता !

[३]

कोई नहीं, कोई नहीं !

यह भूमि है हाला-भरी,
मधुपात्र - मधुबाला - भरी,
ऐसा बुझा जो पा सके मेरे हृदय की प्यास को—
कोई नहीं, कोई नहीं !

सुनता, समझता है गगन,
वन के विहंगों के वचन,
ऐसा समझ जो पा सके मेरे हृदय-उच्छ्वास को—
कोई नहीं, कोई नहीं !

मधुऋतु समीरण चल पड़ा,
वन ले नए पल्लव खड़ा,
ऐसा फिरा जो ला सके मेरे गए विश्वास को—
कोई नहीं, कोई नहीं !

[४]

मैं जीवन में कुछ कर न सका !

जग में अँधियाला छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,
मैंने जलकर दी आयु बिता, पर जगती का तम हर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

अपनी ही आग बुझा लेता,
तो जी को धैर्य बँधा देता,
मधु का सागर लहराता था, लघु प्याला भी मैं भर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

बीता अवसर क्या आएगा,
मन जीवन भर पछताएगा,
मरना तो होगा ही मुझको जब मरना था तब मर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

[५]

किसके लिए ? किसके लिए ?

जीवन मुझे जो ताप दे,
जग जो मुझे अभिशाप दे,
जो काल भी संताप दे, उसको सदा सहता रहूँ
किसके लिए ? किसके लिए ?

चाहे सुने कोई नहीं,
हो प्रतिध्वनित न कभी कहीं,
पर नित्य अपने गीत में निज वेदना कहता रहूँ,
किसके लिए ? किसके लिए ?

क्यों पूछता दिनकर नहीं,
क्यों पूछता गिरिवर नहीं,
क्यों पूछता निर्भर नहीं,
मेरी तरह, जलता रहूँ, गलता रहूँ, बहता रहूँ,
किसके लिए ? किसके लिए ?

[६]

किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

है एक ओर असित निशा,
है एक ओर अरुण दिशा,
पर आज स्वप्नों में फँसा, यह भी नहीं मैं जानता—
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

है एक ओर अगम्य जल,
है एक ओर सुरम्य थल,
पर आज लहरों से ग्रसा, यह भी नहीं मैं जानता—
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

है हार एक तरफ पड़ी,
है जीत एक तरफ खड़ी,
संघर्ष-जीवन में धँसा, यह भी नहीं मैं जानता—
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

[७]

सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

जब सुप्त बड़वानल जगा,
जब खौलने सागर लगा,
उमड़ीं तरंगें ऊर्ध्वगा,
ले तारकों को भी डुबा, तुमने कहा—हो शीत, जम !
सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

जब उठ पड़ा मारुत मचल
हो अग्निमय, रजमय, सजल,
झोंके चले ऐसे प्रबल,
दें पर्वतों को भी उड़ा, तुमने कहा—हो मौन, थम !
सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

जब जग पड़ी तृष्णा अमर,
दृग में फिरी विद्युत लहर,
आतुर हुए ऐसे अधर,
पी लें अतल मधु-सिंधु को, तुमने कहा—मदिरा खतम !
सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

[८]

पूछता, पाता न उत्तर!

जब चला जाता उजाला,
लौटती जब विहग-माला,
"प्रात को मेरा विहग जो उड़ गया था, लौट आया?"—
पूछता, पाता न उत्तर!

जब गगन में रात आती,
दीप मालाएँ जलाती,
"अस्त जो मेरा सितारा था हुआ, फिर जगमगाया।"—
पूछता, पाता न उत्तर!

पूर्व में जब प्रात आता,
भृङ्ग-दल मधुगीत गाता,
"मौन जो मेरा भ्रमर था हो गया, फिर गुनगुनाया?
पूछता, पाता न उत्तर!

[१०]

तब रोक न पाया मैं आँसू !

जिसके पीछे पागल होकर
मैं दौड़ा अपने जीवन-भर,
जब मृगजल में परिवर्तित हो मुझपर मेरा अरमान हँसा !
तब रोक न पाया मैं आँसू !

जिसमें अपने प्राणों को भर
कर देना चाहा अजर-अमर,
जब विस्मृति के पीछे छिपकर मुझपर वह मेरा गान हँसा !
तब रोक न पाया मैं आँसू !

मेरे पूजन-आराधन को,
मेरे संपूर्ण समर्पण को,
जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हँसा !
तब रोक न पाया मैं आँसू !

[११]

मिट्टी दीन कितनी, हाय !

हृदय की ज्वाला जलाती,
अश्रु की धारा बहाती,
और उर-उच्छ्वास में यह कांपती निरुपाय !
मिट्टी दीन कितनी, हाय !

शून्यता एकान्त मन की,
शून्यता जैसे गगन की,
थाह पाती है न इसका मृत्तिका असहाय !
मिट्टी दीन कितनी, हाय !

वह किसे दोषी बताए,
और किसको दुख सुनाए,
जब कि मिट्टी साथ मिट्टी के करे अन्याय !
मिट्टी दीन कितनी हाय !

[१२]

त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

जब रजनी के सूने क्षण में,
तन-मन के एकाकीपन में
कवि अपनी विह्वल वाणी से अपना व्याकुल मन बहलाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

जब उर की पीड़ा से रोकर,
फिर कुछ सोच-समझ-चुप होकर
विरही अपने ही हाथों से अपने आँसू पोंछ हटाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

पंथी चलते-चलते थककर
बैठ किसी पथ के पत्थर पर
जब अपने ही थकित करों से अपना विथकित पाँव दबाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

[१३]

तुम्हारा लौह चक्र आया !

कुचल चला अचला के वन घन,
बसे नगर सब निपट निठुर बन,
चूर हुईं चट्टान, क्षार पर्वत की दृढ़ काया !
तुम्हारा लौह चक्र आया !

अगणित ग्रह-नक्षत्र गगन के
टूट पिसे, मरु-सिकता-कण के
रूप उड़े, कुछ धुवाँ-धुवाँ-सा अम्बर में छाया !
तुम्हारा लौह चक्र आया !

तुमने अपना चक्र उठाया,
अचरज से निज मुख फैलाया,
दंत-चिह्न केवल मानव का जब उसपर पाया !
तुम्हारा लौह चक्र आया !

[१४]

अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ!

वृक्ष हों भले खड़े,
हों घने, हों बड़े,
एक पत्र-छाँह भी माँग मत, माँग मत, माँग मत !
अग्नि पथ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ!

तू न थकेगा कभी !
तू न थमेगा कभी !
तू न मुड़ेगा कभी !—कर शपथ, कर शपथ, कर शपथ !
अग्नि पथ! अग्नि पथ! अग्नि पथ!

यह महान दृश्य है—
चल रहा मनुष्य है
अश्रु-स्वेद-रक्त से लथपथ, लथपथ, लथपथ !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !

[१५]

जीवन शाप या वरदान ?

सुप्त को तुमने जगाया,
मौन को मुखरित बनाया,
करुण क्रंदन को बताया क्यों मधुरतम गान ?
जीवन शाप या वरदान ?

सजग फिर से सुप्त होगा,
गीत फिर से गुप्त होगा,
मध्य में अवसाद का ही क्यों किया सम्मान ?
जीवन शाप या वरदान ?

पूर्ण भी जीवन करोगे,
हर्ष से क्षण-क्षण भरोगे,
तो न कर दोगे उसे क्या एक दिन बलिदान ?
जीवन शाप या वरदान ?

[१६]

अग्नि देश से आता हूँ मैं !

झुलस गया तन, झुलस गया मन,
झुलस गया कवि-कोमल जीवन,
किन्तु अग्नि वीणा पर अपने दग्ध कंठ से गाता हूँ मैं !
अग्नि देश से आता हूँ मैं !

स्वर्ण शुद्ध कर लाया जग में,
उसे लुटाता आया मग में,
दीनों का मैं वेश किए, पर दीन नहीं हूँ दाता हूँ मैं !
अग्नि देश से आता हूँ मैं !

तुमने अपने कर फैलाए,
लेकिन देर बड़ी कर आए,
कंचन तो लुट चुका, पथिक, अब लूटो राख लुटाता हूँ मैं !
अग्नि देश से आता हूँ मैं !

[१७]

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !

युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल,
मनुज-पराजय के स्मारक हैं मठ, मस्जिद, गिरजाघर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !

मिला नहीं जो स्वेद बहाकर,
निज लोहू से भीग-नहाकर,
वर्जित उसको, जिसे ध्यान है जग में कहलाए नर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !

झुकी हुई अभिमानी गर्दन,
बँधे हाथ, नत-निष्प्रभ लोचन !
यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है, रे कायर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर !

——

आकुल अंतर

१

[१]

लहर सागर का नहीं शृङ्गार,
उसकी विकलता है;
अनिल अम्बर का नहीं खिलवार,
उसकी विकलता है;
विविध रूपों में हुआ साकार,
रंगों से सुरंजित,
मृत्तिका का यह नहीं संसार
उसकी विकलता है।

[२]

गंध कलिका का नहीं उद्गार,
उसकी विकलता है;
फूल मधुवन का नहीं गलहार,
उसकी विकलता है;
कोकिला का कौन-सा व्यवहार
ऋतुपति को न भाया ?
कूक कोयल की नहीं मनुहार,
उसकी विकलता है।

[३]

गान गायक का नहीं व्यापार,
उसकी विकलता है;
राग वीणा की नहीं झंकार,
उसकी विकलता है;
भावनाओं का मधुर आधार
साँसों से विनिर्मित,
गीत कवि-उर का नहीं उपहार,
उसकी विकलता है।

२

[१]

जानकर अनजान बन जा।
पूछ मत आराध्य कैसा,
जबकि पूजा-भाव उमड़ा;
मृत्तिका के पिंड से कह दे
कि तू भगवान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

[२]

आरती बनकर जला तू,
पथ मिला, मिट्टी सिधारी,
कल्पना की वंचना से
सत्य से अज्ञान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

[३]

किन्तु दिल की आग का
संसार में उपहास कब तक ?
किन्तु होना, हाय, अपने आप
हतविश्वास कब तक ?
अग्नि को अन्दर छिपाकर,
हे हृदय, पाषाण बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

३

[१]

कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं ?

क्या तुम लाई हो चितवन में,
क्या तुम लाई हो चुंबन में,
अपने कर में क्या तुम लाई,
क्या तुम लाईं अपने मन में,
क्या तुम नूतन लाईं जो मैं
फिर से बंधन झेलूं ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं ?

[२]

अश्रु पुराने, आह पुरानी,
युग बाहों की चाह पुरानी,
उथले मन की थाह पुरानी,
वही प्रणय की राह पुरानी,
अर्घ्य प्रणय का कैसे अपनी
अन्तर्ज्वाला में लूं ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं ?

[३]

खेल चुका मिट्टी के घर से,
खेल चुका मैं सिन्धु लहर से,
नभ के सूनेपन से खेला,
खेला झंझा के झर-झर से;
तुम में आग नहीं है तब क्या
संग तुम्हारे खेलूं ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूं ?

४

[१]

क्या है मेरी बारी में।
जिसे सींचना था मधुजल से
सींचा खारे पानी से,
नहीं उपजता कुछ भी ऐसी
विधि से जीवन-क्यारी में।
क्या है मेरी बारी में।

[२]

आँसू-जल से सींच-सींचकर
बेलि विवश हो बोता हूँ,
स्रष्टा का क्या अर्थ छिपा है
मेरी इस लाचारी में।
क्या है मेरी बारी में।

[३]

टूट पड़े मधुऋतु मधुवन में
कल ही तो क्या मेरा है,
जीवन बीत गया सब मेरा
जीने की तैयारी में।
क्या है मेरी बारी में।

५

[१]

वह नभ कंपनकारी समीर,
जिसने बादल की चादर को
दो झटके में कर तार-तार,
दृढ़ गिरि शृङ्गों की शिला हिला,
डाले अनगिन तरुवर उखाड़;
होता समाप्त अब वह समीर
कलि की मुसकानों पर मलीन !
वह नभ कंपनकारी समीर ।

[२]

वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर,
जिसने क्षिति के वक्षस्थल को
निज तेज धार से दिया चीर,
कर दिए अनगिनत नगर-ग्राम-
घर बेनिशान कर मग्न-नीर;
होता समाप्त अब वह प्रवाह
तट-शिला-खंड पर क्षीण-क्षीण !
वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर ।

[३]

मेरे मानस की महापीर,
जो चली विधाता के सिर पर
गिरने को बनकर वज्र शाप,
जो चली भस्म कर देने को
यह निखिल सृष्टि बन प्रलय ताप;
होती समाप्त अब वही पीर,
लघु-लघु गीतों में शक्तिहीन !
मेरे मानस की महापीर ।

६

[१]

लो! दिन बीता, लो रात गई,
सूरज ढलकर पच्छिम पहुँचा,
डूबा, संध्या आई, छाई,
सौ संध्या-सी वह संध्या थी,
क्यों उठते-उठते सोचा था,
दिन में होगी कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

[२]

धीमे-धीमे तारे निकले,
धीरे-धीरे नभ में फैले,
सौ रजनी-सी वह रजनी थी
क्यों संध्या को यह सोचा था,
निशि में होगी कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

[३]

चिड़ियाँ चहकीं, कलियाँ महकीं,
पूरब से फिर सूरज निकला,
जैसे होती थी सुबह हुई,
क्यों सोते-सोते सोचा था,
होगी प्रातः कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

७

दोनों चित्र सामने मेरे।

पहला

सिर पर बाल घने, घुंघराले,
काले, कड़े, बड़े, बिखरे-से,
मस्ती, आजादी, बेफिकरी,
बेखबरी के हैं संदेसे।

माथा उठा हुआ ऊपर को,
भौंहों में कुछ टेढ़ापन है,
दुनिया को है एक चुनौती,
कभी नहीं झुकने का प्रण है।

नयनों में छाया-प्रकाश की
आँख-मिचौनी छिड़ी परस्पर,
बेचैनी में, बेसबरी में
लुके छिपे हैं सपने सुन्दर।

दूसरा

सिर पर बाल कढ़े कंघी से
तरतीबी से, चिकने काले,
जग की रूढ़ि-रीति ने जैसे
मेरे ऊपर फंदे डाले।

भौहें झुकी हुई नीचे को,
माथे के ऊपर है रेखा,
अंकित किया जगत ने जैसे
मुझपर अपनी जय का लेखा।

नयनों के दो द्वार खुले हैं,
समय दे गया ऐसी दीक्षा,
स्वागत सबके लिए यहाँ पर,
नहीं किसी के लिए प्रतीक्षा।

८

[१]

चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !
आज अधर से अधर मिले हैं,
आज बाँह से बाँह मिली,
आज हृदय से हृदय मिले हैं,
मन से मन की चाह मिली;
चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !

[२]

चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है,
कितनी बार धरा पर प्रेयसि-
प्रियतम का अभिसार हुआ है !
चाँद सितारे मिलकर बोले ।

[३]

चाँद-सितारो, मिलकर रोओ !
आज अधर से अधर अलग है,
आज बाँह से बाँह अलग,
आज हृदय से हृदय अलग है,
मन से मन की चाह अलग;
चाँद-सितारो मिलकर रोओ !

[४]

चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
अटल प्रणय के बन्धन टूटे,
कितनी बार धरा के ऊपर
प्रेयसि-प्रियतम के प्रण टूटे !
चाँद-सितारे मिलकर बोले।

९

[१]

इतने मत उन्मत्त बनो।

जीवन मधुशाला से मधु पी
बनकर तन-मन-मतवाला,
गीत सुनाने लगा झूमकर
चूम-चूमकर मैं प्याला—

शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत उन्मत्त बनो।

[२]

इतने मत संतप्त बनो।
जीवन मरघट पर अपने सब
अरमानों की कर होली,
चला राह में रोदन करता
चिता राख से भर झोली—

शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत संतप्त बनो।

[३]

इतने मत उत्तप्त बनो।
मेरे प्रति अन्याय हुआ है
ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण,
करने लगा अग्नि-आनन हो
गुरु गर्जन गुरुतर तर्जन—

शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह
इतने मत उत्तप्त बनो।

१०

[१]

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

मैं दुखी जब-जब हुआ
संवेदना तुमने दिखाई,
मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा,
रीति दोनों ने निभाई,
किन्तु इस आभार का अब
हो उठा है बोझ भारी;

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

[२]

एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा ?
उस नयन से बह सकी कब
इस नयन की अश्रु-धारा ?
सत्य को मूँदे रहेगी
शब्द की कब तक पिटारी ?

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

[३]

कौन है जो दूसरे को
    दुःख अपना दे सकेगा ?
कौन है जो दूसरे से
    दुःख उसका ले सकेगा ?
क्यों हमारे बीच धोखे
    का रहे व्यापार जारी ?

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

[४]

क्यों न हम लें मान हम हैं
    चल रहे ऐसी डगर पर,
हर पथिक जिसपर अकेला,
    दुख नहीं बँटते परस्पर,
दूसरों की वेदना में
    वेदना जो है दिखाता,
वेदना से मुक्ति का निज
    हर्ष केवल वह छिपाता;
तुम दुखी हो तो सुखी मैं
    विश्व का अभिशाप भारी !

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?

११

[१]

काल क्रम से—

जिसके आगे झंझा रुकते
जिसके आगे पर्वत झुकते—
प्राणों का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,
उसका भी है कुछ आकर्षण ।

[२]

नियति नियम से—

जिसको समझा सुकरात नहीं,
जिसको बूझा बुकरात नहीं—
किस्मत का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,
उसका भी है कुछ आकर्षण ।

[३]

आत्म भ्रम से—

जिससे योगी ठग जाते हैं,
गुरु ज्ञानी धोखा खाते हैं—
स्वप्नों का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,
उसका भी है कुछ आकर्षण।

[४]

कालक्रम से, नियति-नियम से,
आत्मभ्रम से,
रह न गया जो, मिल न सका जो,
सच न हुआ जो,
प्रिय जन अपना, प्रिय धन अपना
अपना सपना,
इन्हें छोड़कर जीवन जितना,
उसमें भी आकर्षण कितना !

१२

[१]

मैं जीवन की शंका महान।

युग-युग संचालित राह छोड़,
युग-युग संचित विश्वास तोड़,
मैं चला आज युग-युग सेवित
पाखंड-रूढ़ि से बैर ठान।
मैं जीवन की शंका महान।

[२]

होगी न हृदय में शांति व्याप्त,
कर लेता जब तक नहीं प्राप्त,
जग-जीवन का कुछ नया अर्थ,
जग-जीवन का कुछ नया ज्ञान।
मैं जीवन की शंका महान।

[३]

गहनांधकार में पाँव धार,
युग नयन फाड़, युग कर पसार,
उठ-उठ, गिर-गिरकर बार बार
मैं खोज रहा हूँ अपना पथ,
अपनी शंका का समाधान।
मैं जीवन की शंका महान।

सतरंगिनी

नागिन

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[१]

तू प्रलय काल के मेघों का
कज्जल-सा कालापन लेकर,
तू नवल सृष्टि की ऊषा की
नव द्युति अपने अंगों में भर,

बड़वाग्नि-विलोड़ित अंबुधि की
उत्तुंग तरंगों से गति ले,

रथ युत रवि-शशि को बन्दी कर
दृग-कोयों का रच बन्दीघर,

कौंधती तड़ित को जिह्वा-सी
विष-मधुमय दाँतों में दाबे,
तू प्रकट हुई सहसा कैसे
मेरी जगती में, जीवन में ?

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[२]

तू मनोमोहिनी रंभा-सी,
तू रूपवती रति रानी-सी,
तू मोहमयी उर्वशी सदृश,
तू मानमयी इन्द्राणी-सी,

तू दयामयी जगदम्बा-सी,
तू मृत्यु सदृश कटु, क्रूर, निठुर,

तू लयंकरी कालिका सदृश,
तू भयंकरी रुद्राणी-सी,

तू प्रीति, भीति, आसक्ति, घृणा
की एक विषम संज्ञा बनकर,
परिवर्तित होने को आई
मेरे आगे क्षण-प्रतिक्षण में।

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

[३]

प्रलयंकर शंकर के सिर पर
जो धूलि-धूसरित जटाजूट,
उसमें कल्पों से सोई थी
पी कालकूट का एक घूंट,

सहसा समाधि कर भंग शम्भु
जब तांडव में तल्लीन हुए,

निद्रालसमय, तंद्रानिमग्न
तू धूमकेतु-सी पड़ी छूट;

अब घूम जलस्थल-अम्बर में,
अब घूम लोक-लोकान्तर में
तू किसको खोजा करती है,
तू है किसके अन्वीक्षण में ?

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[४]

तू नागयोनि नागिनी नहीं,
तू विश्व विमोहक वह माया,
जिसके इंगित पर युग-युग से
यह निखिल विश्व नचता आया,

अपने तप के तेजोबल से
दे तुझको व्याली की काया,

धूर्जटि ने अपने जटिल जूट-
व्यूहों में तुझको भरमाया,

पर मदनकदन कर महायतन
भी तुझे न सब दिन बाँध सके
तू फिर स्वतंत्र बन फिरती है
सबके लोचन में, तन-मन में;

नतन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[५]

तू फिरती चंचल फिरकी-सी
अपने फन में फुफकार लिए,
दिग्गज भी जिससे काँप उठें
ऐसा भीषण हुंकार लिए,

पर पल में तेरा स्वर बदला,
पल में तेरी मुद्रा बदली,

तेरा रूठा है कौन कि तू
अधरों पर मृदु मनुहार लिए,

अभिनन्दन करती है उसका,
अभिवादन करती है उसका,
लगती है कुछ भी देर नहीं
तेरे मन के परिवर्तन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[६]

प्रेयसि का जग के तापों से
रक्षा करनेवाला अंचल,
चंचल यौवन कल पाता है
पाकर जिसकी छाया शीतल,

जीवन का अन्तिम वस्त्र कफन
जिसको नख से शिख तक तनकर

वह सोता ऐसी निद्रा में
है होता जिसके हेतु न कल,

जिसको मन तरसा करता है,
जिससे मन डरपा करता है,
दोनों की झलक मुझे मिलती
तेरे फन के अवगुंठन में !

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[७]

जाग्रत जीवन का कंपन है
तेरे अंगों के कम्पन में,
पागल प्राणों का स्पन्दन है
तेरे अंगों के स्पन्दन में,

तेरी द्रुत दोलित काया में
मतवाली घड़ियों की घड़कन,

उन्मद साँसों की सिहरन है
तेरी काया के सिहरन में,

अल्हड़ यौवन करवट लेता
अब तू भू पर लुंठित होती,
अलमस्त जवानी अंगड़ाती
तेरे अंगों की ऐंठन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

[८]

तू उच्च महत्वाकांक्षा-सी
नीचे से उठती ऊपर को,
निज मुकुट बना लेगी जैसे
तारावलि-मंडित अम्बर को,

तू विनत प्रार्थना-सी झुककर
ऊपर से नीचे को आती,

जैसे कि किसी की पद-रज से
ढकने को है अपने सिर को,

तू आशा-सी आगे बढ़ती,
तू लज्जा-सी पीछे हटती,
जब एक जगह टिकती, लगती
दृढ़ निश्चय-सी निश्चल मन में।

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

[९]

मलयाचल से मलयानिल-सी
पल बल खाती, पल इतराती
तू जब आती, युग-युग दहती
शीतल हो जाती है छाती,

पर जब चलती उद्वेग भरी
उत्तप्त मरुस्थल की लू-सी

चिर संचित, सिंचित अन्तर के
नन्दन में आग लगा जाती;

शत हिम शिखरों की शीतलता,
शत ज्वालामुखियों की दहकन,
दोनों आभासित होती हैं
मुझको तेरे आलिंगन में!

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

[१०]

इस पुतली के अन्दर चित्रित
जग के अतीत की करुण कथा,
जग के यौवन का संघर्षण,
जग के जीवन की दुसह व्यथा;

है झूम रही उस पुतली में
ऐसे सुख-सपनों की झाँकी,

जो निकली है जब आशा ने
दुर्गम भविष्य का गर्भ मथा;

हो क्षुब्ध-मुग्ध पल-पल क्रम से
लंगर-सा हिल-हिल वर्तमान
मुख अपना देखा करता है
तेरे नयनों के दर्पण में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[११]

तेरे आनन का एक नयन
दिनमणि-सा दिपता उस पथ पर,
जो स्वर्ग लोक को जाता है,
जो चिर संकटमय, चिर दुस्तर;

तेरे आनन का एक नेत्र
दीपक-सा उस मग पर जगता,

जो नरक लोक को जाता है,
जो चिर सुखमामय, चिर सुखकर;

दोनों के अन्दर आमंत्रण,
दोनों के अन्दर आकर्षण,
खुलते-मुंदते हैं स्वर्ग-नरक—
के दर तेरी हर चितवन में !

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[१२]

सहसा यह तेरी भृकुटि झुकी,
नभ से करुणा की वृष्टि हुई,
मृत-मूर्च्छित पृथ्वी के ऊपर
फिर से जीवन की सृष्टि हुई,

सहसा यह तेरी भृकुटि तनी,
नभ से अंगारे बरस पड़े,

जग के आँगन में लपट उठी,
स्वप्नों की दुनिया नष्ट हुई;

स्वेच्छाचारिणि, हे निष्कारण
सब तेरे मन का क्रोध, कृपा,
जग मिटता-बनता रहता है
तेरे भ्रू के संचालन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[१३]

अपने प्रतिकूल गुणों की सब
माया तू संग दिखाती है,
भ्रम, भय, संशय, संदेहों से
काया विजड़ित हो जाती है,

फिर एक लहर-सी आती है,
फिर होश अचानक होता है,

विश्वासमयी आशा, निष्ठा,
श्रद्धा पलकों पर छाती है;

तू मार अमृत से सकती है,
अमरत्व गरल से दे सकती,
मेरी मति सब सुध-बुध भूली
तेरे छलनामय लक्षण में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[१४]

विपरीत क्रियाएँ मेरी भी
अब होती हैं तेरे आगे,
पग तेरे पास चले आए
जब वे तेरे भय से भागे,

मायाविनि, क्या कर देती है,
सीधा उलटा हो जाता है,

जब मुक्ति चाहता था अपनी
तुझसे मैंने बन्धन माँगे,

अब शान्ति दुसह-सी लगती है,
अब मन अशान्ति में रमता है,
अब जलन सुहाती है उर को,
अब सुख मिलता उत्पीड़न में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[१५]

तूने आँखों में आँख डाल
है बाँध लिया मेरे मन को,
मैं तुझे कीलने चला मगर
कीला तूने मेरे तन को,

तेरी परछाईं-सा बन में
तेरे संग हिलता-डुलता हूँ,

मैं नहीं समझता अलग-अलग
अब तेरे-अपने जीवन को,

मैं तन-मन का दुर्बल प्राणी
ज्ञानी, ध्यानी भी बड़े-बड़े
हो दास चुके तेरे, मुझको
क्या लज्जा आत्म समर्पण में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में !

[१६]

तुझ पर न सका चल कोई भी
मेरा प्रयोग मारण-मोहन,
तेरा न फिरा मन और कहीं,
फेंका भी मैंने उच्चाटन,

सब मंत्र, तंत्र, अभिचारों पर
तू हुई विजयिनी निष्प्रयत्न,

उलटा तेरे वश में आया
मेरा परिचालित वशीकरण;

कर यत्न थका, तू सध न सकी
मेरे गीतों से, गायन से,
कर यत्न थका, तू बँध न सकी
मेरे छंदों के बंधन में;

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

[१७]

सब साम-दाम औ' दंड-भेद
तेरे आगे बेकार हुआ,
जप, तप, व्रत, संयम, साधन का
असफल सारा व्यापार हुआ,

तू दूर न मुझसे भाग सकी,
मैं दूर न तुझसे भाग सका,

अनिवारिणि, करने को अंतिम
निश्चय, ले, मैं तैयार हुआ—

अब शान्ति, अशान्ति, मरण, जीवन
या इनसे भी कुछ भिन्न अगर,
सब तेरे विषमय चुंबन में,
सब तेरे मधुमय दंशन में!

नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन,
मेरे जीवन के आँगन में!

अँधेरे का दीपक

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

[१]

कल्पना के हाथ से कम-
नीय जो मन्दिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमें
वितानों को तना था,

स्वप्न ने अपने करों से
था जिसे रुचि से सँवारा,

स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों
से, रसों से जो सना था,

ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शान्ति की
कुटिया बनाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

[२]

बादलों के अश्रु से धोया
गया नभ-नील नीलम
का बनाया था गया मधु-
पात्र मनमोहक, मनोरम,

प्रथम ऊषा की किरण की
लालिमा-सी लाल मदिरा

थी उसी में चमचमाती
नव घनों में चंचला सम,

वह अगर टूटा मिलाकर
हाथ की दोनों हथेली,
एक निर्मल स्रोत से
तृष्णा बुझाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

[३]

क्या घड़ी थी एक भी
चिन्ता नहीं थी पास आई,
कालिमा तो दूर, छाया
भी पलक पर थी न छाई,

आँख से मस्ती झपकती,
बात से मस्ती टपकती

थी हँसी ऐसी जिसे सुन
बादलों ने शर्म खाई,

वह गई तो ले गई
उल्लास के आधार, माना,
पर अथिरता पर समय की
मुसकराना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

[४]

हाय, वे उन्माद के झोंके
कि जिनमें राग जागा,
वैभवों से फेर आँखें
गान का वरदान माँगा,

एक अन्तर से ध्वनित हों
दूसरे में जो निरंतर,

भर दिया अम्बर-अवनि को
मत्तता के गीत गा-गा,

अन्त उनका हो गया तो
मन बहलने के लिए ही,
ले अधूरी पंक्ति कोई
गुनगुनाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

[५]

हाय, वे साथी कि चुंबक-
लौह-से जो पास आए,
पास क्या आए, हृदय के
बीच ही गोया समाए,

दिन कटे ऐसे कि कोई
तार वीणा के मिलाकर

एक मीठा और प्यारा
जिन्दगी का गीत गाए,

वे गए तो सोचकर यह
लौटनेवाले नहीं वे,
खोज मन का मीत कोई
लौ लगाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

[६]

क्या हवाएँ थीं कि उजड़ा
प्यार का वह आशियाना,
कुछ न आया काम तेरा
शोर करना, गुल मचाना,

नाश की उन शक्तियों के
साथ चलता जोर किसका,

किन्तु ऐ निर्माण के
प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना,

जो बसे हैं वे उजड़ते
हैं प्रकृति के जड़ नियम से,
पर किसी उजड़े हुए को
फिर बसाना कब मना है ?

है अँधेरी रात पर
दीवा जलाना कब मना है ?

—

जो बीत गई

[१]

जो बीत गई सो बात गई !

जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,

वह डूब गया तो डूब गया,
अम्बर के आनन को देखो,

कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गए फिर कहाँ मिले;
पर बोलो टूटे तारों पर

कब अम्बर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

[२]

जीवन में वह था एक कुसुम,
थे उसपर नित्य निछावर तुम,

वह सूख गया तो सूख गया;
मधुवन की छाती को देखो,

सूखीं कितनी इसकी कलियाँ,
मुर्झाईं कितनी वल्लरियाँ,
जो मुर्झाईं फिर कहाँ खिलीं,
पर बोलो सूखे फूलों पर

कब मधुवन शोर मचाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

[३]

जीवन में मधु का प्याला था,
तुमने तन-मन दे डाला था,

वह टूट गया तो टूट गया,
मदिरालय का आँगन देखो,

कितने प्याले हिल जाते हैं,
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं,

जो गिरते हैं कब उठते हैं,
पर बोलो टूटे प्यालों पर

कब मदिरालय पछताता है !
जो बीत गई सो बात गई !

[४]

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,
मधुघट फूटा ही करते हैं,
लघु जीवन लेकर आए हैं,
प्याले टूटा ही करते हैं,

फिर भी मदिरालय के अन्दर
मधु के घट हैं, मधुप्याले हैं,

जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं;

वह कच्चा पीनेवाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर,

जो सच्चे मधु से जला हुआ

कब रोता है, चिल्लाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

अजेय

[१]

अजेय तू अभी बना !

न मंजिलें मिलीं कभी,
न मुश्किलें हिलीं कभी,

मगर कदम थमे नहीं,
करार-कौल जो ठना।
अजेय तू अभी बना !

[२]

सफल न एक चाह भी,
सुनी न एक आह भी,

मगर नयन भुला सके
कभी न स्वप्न देखना
अजेय तू अभी बना !

[३]

अतीत याद है तुझे,
कठिन विषाद है तुझे,

मगर भविष्य से रुका
न आँखमुदौल खेलना।
अजेय तू अभी बना!

[४]

सुरा समाप्त हो चुकी,
सुपात्र-माल खो चुकी,

मगर मिटी, हटी, दबी
कभी न प्यास-वासना।
अजेय तू अभी बना!

[५]

पहाड़ टूटकर गिरा,
प्रलय पयोद भी घिरा,

मनुष्य है कि देव है
कि मेरुदंड है तना!
अजेय तू अभी बना!

निर्माण

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

[१]

वह उठी आँधी कि नभ में
छा गया सहसा अँधेरा,
धूलि धूसर बादलों ने
भूमि को इस भाँति घेरा,

रात-सा दिन हो गया, फिर
रात आई और काली,

लग रहा था अब न होगा
इस निशा का फिर सवेरा,

रात के उत्पात-भय से
भीत जन-जन, भीत कण-कण,
किन्तु प्राची से उषा की
मोहनी मुसकान फिर-फिर !

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

[२]

वह चले झोंके कि काँपे
भीम कायावान भूधर,
जड़ समेत उखड़-पुखड़कर
गिर पड़े, टूटे विटप वर,

हाय, तिनकों से विनिर्मित
घोंसलों पर क्या न बीती

डगमगाए जबकि कंकड़,
ईंट, पत्थर के महल-घर;

बोल आशा के विहंगम,
किस जगह पर तू छिपा था,
जो गगन पर चढ़ उठाता
गर्व से निज तान फिर-फिर !

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

[३]

क्रुद्ध नभ के वज्र दंतों
में उषा है मुसकराती,
घोर गर्जनमय गगन के
कंठ में खग पंक्ति गाती;

एक चिड़िया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है,

वह सहज में ही पवन
उंचास को नीचा दिखाती !

नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख,
प्रलय की निस्तब्धता से
सृष्टि का नव गान फिर-फिर !

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर !

—

नई झनकार

[१]

छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

मौन तम के पार से यह कौन
तेरे पास आया,
मौत में सोए हुए संसार
को किसने जगाया,

कर गया है कौन फिर भिनसार,
वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

[२]

रश्मियों में रंग पहन ली आज
किसने लाल सारी,
फूल-कलियों से प्रकृति ने माँग
है किसकी सँवारी,

कर रहा है कौन फिर शृङ्गार,
वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

[३]

लोक के भय ने भले ही रात
का हो भय मिटाया,
किस लगन ने रात-दिन का भेद
ही मन से हटाया,

कौन करता है खुले अभिसार,
वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

[४]

तू जिसे लेने चला था भूल-
कर अस्तित्व अपना,
तू जिसे लेने चला था बेच-
कर अपनत्व अपना,

दे गया है कौन वह उपहार,
वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

[५]

जो करुण विनती, मधुर मनुहार
से न कभी पिघलते,
टूटते कर, फूट जाते शीश
तिलभर भी न हिलते,

खुल कभी जाते स्वयं वे द्वार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

[६]

भूल तू जा अब पुराना गीत
औ' गाथा पुरानी,
भूल तू जा अब दुखों का राग
दुर्दिन की कहानी,

ले नया जीवन, नई झनकार,
वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार,
वीणा बोलती है !

मुझे पुकार लो

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

[१]

जमीन है न बोलती
न आसमान बोलता,
जहान देखकर मुझे
नहीं जबान खोलता,

नहीं जगह कहीं जहाँ
न अजनबी गिना गया,

कहाँ-कहाँ न फिर चुका
दिमाग-दिल टटोलता,

कहाँ मनुष्य है कि जो
उमीद छोड़कर जिया,
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो;

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

[२]

तिमिर-समुद्र कर सकी
न पार नेत्र की तरी,
विनष्ट स्वप्न से लदी,
विषाद याद से भरी,

न कूल भूमि का मिला,
न कोर भोर की मिली,

न कट सकी, न घट सकी
विरह-घिरी विभावरी,

कहाँ मनुष्य है जिसे
कमी खली न प्यार की,
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे दुलार लो !

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

[३]

उजाड़ से लगा चुका
उमीद मैं बहार की,
निदाघ से उमीद की
बसंत के बयार की,

मरुस्थली मरीचिका
सुधामयी मुझे लगी,

अँगार से लगा चुका
उमीद मैं तुषार की,

कहाँ मनुष्य है जिसे
न भूल शूल-सी गड़ी,
इसीलिए खड़ा रहा
कि भूल तुम सुधार लो !

इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो !
पुकार कर दुलार लो, दुलार कर सुधार लो !

———

तुम गा दो

[१]

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

मेरे वर्ण-वर्ण विशृंखल,
चरण-चरण भरमाए,
गूँज-गूँजकर मिटनेवाले
मैंने गीत बनाए;

कूक हो गई हूक गगन की
कोकिल के कंठों पर,
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

[२]

जब-जब जग ने कर फैलाए,
मैंने कोष लुटाया,
रंक हुआ मैं निज निधि खोकर
जगती ने क्या पाया !

भेंट न जिसमें मैं कुछ खोऊँ
पर तुम सब कुछ पाओ,
तुम ले लो, मेरा दान अमर हो जाए !
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए !

[३]

सुन्दर और असुन्दर जग में
मैंने क्या न सराहा,
इतनी ममतामय दुनिया में
मैं केवल अनचाहा;

देखूं अब किसकी रुकती है
आ मुझपर अभिलाषा,
तुम रख लो, मेरा मान अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

[४]

दुख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी, कुछ रहता,
जीवन की अन्तिम घड़ियों में
भी तुमसे यह कहता,

सुख की एक साँस पर होता
है अमरत्व निछावर,
तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए!
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए!

नया वर्ष

वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन उत्कर्ष नव।

नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।

नवल चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।

गीत नवल,
प्रीति नवल,
जीवन की रीति नवल,
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल!

विश्वास

[१]

पंथ जीवन का चुनौती
दे रहा है हर क़दम पर,
आखिरी मंज़िल नहीं होती
कहीं भी दृष्टिगोचर,

धूलि से लद, स्वेद से सिच
हो गई है देह भारी,

कौन-सा विश्वास मुझको
खींचता जाता निरंतर ?—

पंथ क्या, पथ की थकन क्या,
स्वेद कण क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

[२]

एक भी संदेश आशा,
का नहीं देते सितारे,
प्रकृति ने मंगल शकुन पथ
में नहीं मेरे सँवारे,

विश्व का उत्साह वर्धक
शब्द भी मैंने सुना कब,

किन्तु बढ़ता जा रहा हूँ
लक्ष्य पर किसके सहारे ?—

विश्व की अवहेलना क्या,
अपशकुन क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

[३]

चल रहा है पर पहुँचना
लक्ष्य पर इसका अनिश्चित,
कर्म पर भी कर्म फल से
यदि रहा यह पांथ वंचित,

विश्व तो उसपर हँसेगा
खूब भूला, खूब भटका !

किन्तु गा यह पंक्तियाँ दो
वह करेगा धैर्य संचित:—

व्यर्थ जीवन, व्यर्थ जीवन
की लगन क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं !

[४]

अब नहीं उस पार का भी
भय मुझे कुछ भी सताता,
उस तरफ के लोक से भी
जुड़ चुका है एक नाता,

मैं उसे भूला नहीं तो
वह नहीं भूली मुझे भी,

मृत्यु-पथ पर भी बढ़ूंगा
मोद से यह गुनगुनाता—

अंत यौवन, अंत जीवन
का, मरण क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं !

———

बंगाल का काल

बंगाल का काल

पड़ गया बंगाले में काल,
भरी कंगालों से धरती,
भरी कंकालों से धरती!

क्या कहा ?
कहाँ पड़ गया काल,
कहाँ कंगाल,
कहाँ कंकाल,
क्या कहा, कालत्रस्त बंगाल !

वही बंगाल—
जिस पर छाए सजल घनों की
छाया में लह-लह लहराते
खेत धान के दूर-दूर तक,
जहाँ कहीं भी गति नयनों की।

जिस पर फैले नदी-सरोवर,
नद-नाले वर,
निर्मल निर्झर
सिंचित करते वसुन्धरा का
आँगन उर्वर।

जिसमें उगते-बढ़ते तरुवर,
लदे दलों से,
फँदे फलों से,
सजे कली-कुसुमों से सुन्दर।

वही बंगाल—
देख जिसे पुलकित नेत्रों से
भरे कंठ से,
गद्‌गद स्वर से
कवि ने गाया राष्ट्र गान वह—
वन्दे मातरम्,
सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्,
शस्य श्यामलाम्, मातरम्।... ...

वही बंगाल—
जिसकी एक साँस ने भर दी
मरे देश में जान,
आत्म सम्मान,
आजादी की आन,
आज,
काल की गति भी कैसी, हाय,
स्वयं असहाय,
स्वयं निरुपाय,
स्वयं निष्प्राण,

मृत्यु के मुख का होकर ग्रास,
गिन रहा है जीवन की सांस-सांस।

हे कवि, तेरे अमर गान की
सुजला, सुफला,
मलय गंधिता
शस्य श्यामला,
फुल्ल कुसुमिता,
द्रुम सुसज्जिता,
चिर सुहासिनी,
मधुर भाषिणी,
धरणी भरणी,
जगत वन्दिता
बङ्ग भूमि अब नहीं रही व !

बङ्ग भूमि अब
शस्य हीन है,
दीन क्षीण है,
चिर मलीन है,
भरणी आज हो गई हरणी;
जल दे, फल दे और अन्न दे
जो करती थी जीवन दान,
मरघट-सा अब रूप बनाकर,
अजगर-सा अब मुंह फैलाकर
खा लेती अपनी सन्तान !

बोल बङ्ग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरी आग कहाँ है,
आज़ादी का राग कहाँ है,
लगन कहाँ है, लाग कहाँ है !

बोल बङ्ग की वीर मेदिनी,
अब तेरे सिरताज कहाँ हैं,
अब तेरे जाँवाज़ कहाँ हैं,
अब तेरी आवाज़ कहाँ है !

बंकिम ने गर्वोन्नत ग्रीवा
उठा विश्व से
था यह पूछा,
'के बोले मा, तुमि अवले ?'

मैं कहता हूँ,
तू अवला है।
तू होती, मा,
अगर न निर्बल,
अगर न दुर्बल,
तो तेरे यह लक्ष-लक्ष सुत
वंचित रहकर उसी अन्न से,
उसी धान्य से
जिस पर है अधिकार इन्हीं का,
क्योंकि इन्होंने अपने श्रम से

जोता, बोया,
इसे उगाया,
सींच स्वेद से
इसे बढ़ाया,
काटा, माड़ा, ढोया,
भूख-भूख कर,
सूख-सूखकर,
पंजर-पंजर,
गिर धरती पर
यों न तोड़ देते अपना दम
और नपुंसक मृत्यु न मरते।
भूखे बंग देश के वासी!

छाई है मुरदनी मुखों पर,
आँखों में है धँसी उदासी;
विपद् ग्रस्त हो,
क्षुधा त्रस्त हो,
चारों ओर भटकते फिरते,
लस्त-पस्त हो
ऊपर को तुम हाथ उठाते,

मुझसे सुन लो,
नहीं स्वर्ग से अन्न गिरेगा,
नहीं गिरेगी नभ से रोटी;

किन्तु समझ लो,
इस दुनिया की प्रति रोटी में,
इस दुनिया के हर दाने में
एक तुम्हारा भाग लगा है,
एक तुम्हारा निश्चित हिस्सा,
उसे बँटाने,
उसको लेने,
उसे छीनने,
औ' अपनाने
को जो कुछ भी तुम करते हो,
सब कुछ जायज़,
सब कुछ रायज ।

नए जगत में आँखें खोलो,
नए जगत की चालें देखो,
नहीं बुद्धि से कुछ समझा तो
ठोकर खाकर तो कुछ सीखो,
और भुलाओ पाठ पुराने ।

मन से अब संतोष हटाओ,
असंतोष का नाद उठाओ,
करो क्रान्ति का नारा ऊँचा,
भूखो, अपनी भूख बढ़ाओ,
और भूख की ताकत समझो,
हिम्मत समझो,

जुर्रत समझो,
कूवत समझो;
देखो कौन तुम्हारे आगे
नहीं झुका देता सिर अपना ।

हमें भूख का अर्थ बताना,
भूखो, इसको आज समझ लो,
मरने का यह नहीं बहाना !

फिर से जीवित,
फिर से जाग्रत,
फिर से उन्नत
होने का है भूख निमंत्रण,
है आवाहन ।

भूख नहीं दुर्बल, निर्बल है,
भूख सबल है
भूख प्रबल है,
भूख अटल है
भूख कालिका है, काली है,
या काली सर्व भूतेषु
    क्षुधा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
    नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख प्रचंड शक्तिशाली है,
या चंडी सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमोनमः !
भूख अखंड शौर्यशाली है,
या देवी सर्व भूतेषु
क्षुधा रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमोनमः !

भूख भवानी भयावनी है,
अगणित पद, मुख, कर वाली है,
बड़े विशाल उदरवाली है।
भूख धरा पर जब चलती है,
वह डगमग-डगमग हिलती है।
वह अन्याय चबा जाती है,
अन्यायी को खा जाती है,
और निगल जाती है पल में
आततायियों का दुःशासन,
हड़प चुकी अब तक कितने ही
अत्याचारी सम्राटों के
छत्र, किरीट, दंड, सिंहासन !

—

हलाहल

हलाहल

[१]

जगत-घट को विष से कर पूर्ण
किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उसके मुख पर, नारि,
तुम्हारे अधरों का मधु सार,

नहीं तो कब का देता तोड़
पुरुष विष-घट यह ठोकर मार,
इसी मधु का लेने को स्वाद
हलाहल पी जाता संसार !

[२]

जगत-घट, तुझको दूँ यदि फोड़
प्रलय हो जाएगा तत्काल,
मगर सुमदिर, सुन्दरि, सुकुमारि,
तुम्हारा आता मुझको ख्याल;

न तुम होतीं तो, मानो ठीक,
मिटा देता मैं अपनी प्यास,
वासना है मेरी विकराल,
अधिक पर, अपने पर विश्वास !

[३]

हिचकते औ' होते भयभीत
सुरा ो करते स्वीकार,
उन्हें वह मस्ती का उपहार
हलाहल बनकर देता मार;

मगर जो उत्सुक-मन, झुक-झूम
हलाहल पी जाते साह्लाद,
उन्हें इस विष में होता प्राप्त
अमर मदिरा का मादक स्वाद।

[४]

हुई थी मदिरा मुझको प्राप्त
नहीं पर थी वह भेंट, न दान,
अमृत भी मुझको अस्वीकार
अगर कुंठित हो मेरा मान;

दृगों ने मोती की निधि खोल
चुकाया था मधुकण का मोल,
हलाहल आया है यदि पास
हृदय का लोहू दूंगा तोल !

[५]

कि जीवन आशा का उल्लास,
कि जीवन आशा का उपहास,
कि जीवन आशामय उद्‌गार,
कि जीवन आशाहीन पुकार,

दिवा-निशि की सीमा पर बैठ
निकालूं भी तो क्या परिणाम,
विहँसता आता है हर प्रात,
बिलखती जाती है हर शाम !

[६]

जगत है चक्की एक विराट
पाट दो जिसके दीर्घाकार—
गगन जिसका ऊपर फैलाव
अवनि जिसका नीचे विस्तार;

नहीं इसमें पड़ने का खेद,
मुझे तो यह करता हैरान,
कि घिसता है यह यंत्र महान
कि पिसता है यह लघु इंसान !

[७]

रहे गुंजित सब दिन, सब काल
नहीं ऐसा कोई भी राग,
रहे जगती सब दिन सब काल
नहीं ऐसी कोई भी आग,

गगन का तेजोपुंज, विशाल,
जगत के जीवन का आधार
असीमित नभ मंडल के बीच
सर्य बुझता-सा एक चिराग ।

[८]

नहीं है यह मानव की हार
कि दुनिया से करता प्रस्थान,
नहीं है दुनिया में वह तत्त्व
कि जिसमें मिल जाए इंसान,

पड़ी इस पृथ्वी पर हर कब्र,
चिता की भूभल का हर ढेर,
कड़ी ठोकर का एक निशान
लगा जो वह जाता मुंह फेर।

[९]

हलाहल और अमिय, मद एक,
एक रस के ही तीनों नाम,
कहीं पर लगता है रतनार,
कहीं पर श्वेत, कहीं पर श्याम,

हमारे पीने में कुछ भेद
कि कोई पड़ता झुक-झुक झूम,
किसी का घुटता तन-मन-प्राण
अमर पद लेता कोई चूम।

[१०]

सुरा पी थी मैंनें दिन चार
उठा था इतने से ही ऊब,
नहीं रुचि ऐसी मुझको प्राप्त
सकूँ सब दिन मधुता में डूब,

हलाहल से की है पहचान,
लिया उसका आकर्षण मान,
मगर उसका भी करके पान
चाहता हूँ मैं जीवन-दान !

[११]

देखने को मुट्ठी भर धूलि
जिसे यदि फूंको तो उड़ जाय,
अगर तूफानों में पड़ जाय
अवनि-अम्बर के चक्कर खाय,

किन्तु दी किसने उसमें डाल
चार साँसों में उसको बाँध,
धरा को ठुकराने की शक्ति,
गगन को दुलराने की साध !

[१२]

उपेक्षित हो क्षिति से दिन रात
जिसे इसको करना था प्यार,
कि जिसका होने से मृदु अंश
इसे था उसपर कुछ अधिकार,

अहर्निश मेरा यह आश्चर्य
कहाँ से पाकर बल-विश्वास,
बबूला मिट्टी का लघुकाय
उठाए कंधों पर आकाश !

[१३]

आसरा मत ऊपर का देख,
सहारा मत नीचे का माँग,
यही क्या कम तुझको वरदान
कि तेरे अंतस्तल में राग;

राग से बाँधे चल आकाश,
राग से बाँधे चल पाताल,
धँसा चल अन्धकार को भेद
राग से साधे अपनी चाल !

[१४]

कहीं मैं हो जाऊँ लयमान,
कहाँ लय होगा मेरा राग,
विषम हालाहल का भी पान
बढ़ाएगा ही मेरी आग,

नहीं वह मिटने वाला राग
जिसे लेकर चलती है आग,
नहीं वह बुझने वाली आग
उठाती चलती है जो राग !

[१५]

और यह मिट्टी है हैरान
देखकर तेरे अमित प्रयोग,
मिटाता तू इसको हर बार,
मिटाने का इसका तो ढोंग,

अभी तो तेरी रुचि के योग्य
नहीं इसका कोई आकार,
अभी तो जाने कितनी बार
मिटेगा बन-बनकर संसार !

[१६]

पहुँच तेरे अधरों के पास
हलाहल काँप रहा है, देख,
मृत्यु के मुख के ऊपर दौड़
गई है सहसा भय की रेख,

मरण था भय के अन्दर व्याप्त,
हुआ निर्भय तो विष निस्तत्त्व,
स्वयं हो जाने को है सिद्ध
हलाहल से तेरा अमरत्व !

सूत की माला

१

नत्थू खैरे ने गांधी का कर अन्त दिया,
क्या कहा, सिंह को शिशु मेढक ने लील लिया!
धिक्कार काल, भगवान विष्णु के वाहन को
सहसा लपेटने
में समर्थ हो
गया लवा !

पड़ गया सूर्य क्या ठंडा हिम के पाले से,
क्या बैठ गया गिरि मेरु तूल के गाले से !
प्रभु पाहि देश, प्रभु त्राहि जाति, सुर के तन को
अपने मुँह में
लघु नरक कीट ने
लिया दबा !

यह जितना ही मर्मांतक उतना ही सच्चा,
शांतं पापं, जो बिना दाँत का था बच्चा,
करुणा ममता-सी मूर्तिमान मा को कच्चा
देखते-देखते
सब दुनिया के
गया चबा !

२

आओ बापू के अंतिम दर्शन कर जाओ,
चरणों में श्रद्धांजलियाँ अर्पण कर जाओ,
यह रात आखिरी उनके भौतिक जीवन की,
कल उसे करेंगी
भस्म चिता की
ज्वालाएँ ।

डांडी की यात्रा करनेवाले चरण यही,
नोआखाली के संतप्तों की शरण यही,
छू इनको ही छिति मुक्त हुई चंपारन की,
इनकी चापों ने
पापों के दल
दहलाए ।

यह उदर देश की भूख जाननेवाला था,
जन-दुख-संकट ही इसका नित्य नेवाला था,
इसने पीड़ा बहु बार सही अनशन प्रण की,
आघात गोलियों
के ओड़े
बाएँ-दाएँ।

यह छाती परिचित थी भारत की धड़कन से,
यह छाती विचलित थी भारत की तड़पन से,
यह तनी जहाँ, बैठी हिम्मत गोले-गन की,
अचरज ही है,
पिस्तौल इसे जो
बिठलाए।

इन आँखों को था बुरा देखना नहीं सहन,
जो नहीं बुरा कुछ सुनते थे ये वही श्रवण,
मुख यही कि जिससे कभी न निकला बुरा वचन,
यह बन्द-मूक
जग छलछुद्रों से
उकताए।

ये देखो बापू की आजानु भुजाएँ हैं,
उखड़े इनसे गोराशाही के पाए हैं,
लाखों इनकी रक्षा-छाया में आए हैं,
ये हाथ सबल
निज रक्षा में
क्यों सकुचाए।

यह बापू की गर्वीली, ऊँची पेशानी;
बस एक हिमालय की चोटी इसकी सानी;
इससे ही भारत ने अपनी भावी जानी;
जिसने इनको वध करने की मन में ठानी
उसने भारत की किस्मत पर फेरा पानी;
इस देश-जाति
के हुए विधाता
ही बाएँ।

२

यह कौन चाहता है बापू जी की काया
कर शीशे की ताबूत-बद्ध रख ली जाए,
जैसे रक्खी है लाश मास्को में अब तक
लेनिन की, रशिया
के प्रसिद्धतम
नेता की।

हम बुत-परस्त मशहूर भूमि के ऊपर हैं,
शव-मोह मगर हमने कब ऐसा दिखलाया,
क्या राम, कृष्ण, गौतम, अशोक या अकबर की
हम अगर चाहते
लाश नहीं रख
सकते थे।

आत्मा की अजर-अमरता के हम विश्वासी,
काया को हमने जीर्ण वसन बस माना है,
इस महामोह की बेला में भी क्या हमको
वाजिब अपनी
गीता का ज्ञान
भुलाना है।

काया आत्मा को धरती माता का ऋण है,
बापू को अपना अन्तिम कर्ज चुकाने दो,
वे जाति, देश, जग, मानवता से उऋण हुए,
उनपर मृत मिट्टी
का ऋण मत
रह जाने दो।

रक्षा करने की वस्तु नहीं उनकी काया,
उनके विचार संचित करने की चीजें हैं,
उनको भी मत जिल्दों में करके बन्द धरो,
उनको जन-जन
मन-मन, कण-कण
में बिखराओ।

४

अब अर्द्धरात्रि है और अर्द्धजल बेला,
अब स्नान करेगा यह जोधा अलबेला,
लेकिन इसको छेड़ते हुए डर लगता,
यह बहुत अधिक
थककर धरती पर
सोता।

क्या लाए हो जमुना का निर्मल पानी,
परिपाटी के भी होते हैं कुछ मानी,
लेकिन इसकी क्या इसको आवश्यकता,
वीरों का अन्तिम
स्नान रक्त से
होता।

मत यह लोहू से भीगे वस्त्र उतारो,
मत मर्द सिपाही का शृङ्गार बिगाड़ो,
इस गर्द-खून पर चोवा-चन्दन वारो,
मानव पीड़ा प्रतिबिंबित ऐसों का मुँह,
भगवान स्वयं
अपने हाथों से
धोता।

५

तुम बड़ा उसे आदर दिखलाने आए,
चन्दन, कपूर की चिता रचाने आए,
सोचा, किस महारथी की अरथी आती,
सोचा, उसने किस रण में प्राण बिछाए ?

लाओ वे फरसे, बरछे, बल्लम, भाले,
जो निर्दोषों के लोहू से हैं काले,
लाओ वे सब हथियार, छुरे, तलवारें,
जिनसे बेकस-मासूम औरतों, बच्चों,
मर्दों के तुमने लाखों शीश उतारे,
लाओ बन्दूकें जिनसे गिरें हजारों,
तब फिर दुखांत, दुर्दांत महाभारत के
इस भीष्म पितामह की हम चिता बनाएँ।

जिससे तुमने घर-घर में आग लगाई,
जिससे तुमने नगरों की पाँत जलाई,
लाओ वह लूकी सत्यानाशी, घाती,
तब हम अपने बापू की चिता जलाएँ।

वे जलें, बनी रह जाए फिरकेबन्दी,
वे जलें मगर हो आग न उसकी मंदी,
तो तुम सब जाओ, अपने को धिक्कारो,
गांधी जी ने बेमतलब प्राण गँवाए।

६

भेद अतीत एक स्वर उठता—
नैनं दहति पावकः......
निकट, निकटतर और निकटतम
हुई चिता के अरथी, हाय,
बापू के जलने का भी अब, आँखें, देखो दृश्य दुसह।
भेद अतीत एक स्वर उठता—
नैनं दहति पावकः.....

चन्दन की शैया के ऊपर
लेटी है मिट्टी निरुपाय,
लो अब लपटों से अभिभूपित चिता दहकती है दह-दह।
भेद अतीत एक स्वर उठता—
नैनं दहति पावकः...

अगणित भावों की झंझा में
खड़े देखते हम असहाय,
और किया भी क्या...ऽ जाय,
क्षार-क्षार होती जाती है बापू की काया रह-रह।
भेद अतीत एक स्वर उठता—
नैनं दहति पावकः...

७

भारत के सब प्रसिद्ध तीर्थों से; नगरों से
है आज आ रही माँग तपोमय गांधी की
अंतिम धूनी से राख हमें भी चुटकी भर
मिल जाए जिसमें उसे सराएँ ले जाकर
पावन करते
निकटस्थ नदी,
नद, सर, सागर।

अपने तन पर अधिकार समझते थे सब दिन
वे भारत की मिट्टी, भारत के पानी का,
जो लोग चाहते ले जाएँ राख आज,
है ठीक वही जिसको चाहे सारा समाज,
संबद्ध जगह जो हो गांधी की मिट्टी से
साधना करे
रखने को उनकी
कीर्ति-लाज।

हे देश-जाति के दीवानों के चूड़ामणि,
इस चिर यौवनमय, सुन्दर, पावन वसुन्धरा,
की सेवा में मनुहार महज करते-करते
दी तुमने अपनी उमर गँवा, दी देह त्याग;
अब राख तुम्हारी आर्यभूमि की भरे माँग,
हो अमर तुम्हें खो
इस तपस्विनी
का सुहाग।

८

थैलियाँ समर्पित की सेवा के हित हजार,
श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं तुमको लाख बार,
गो तुम्हें न थी इनकी कोई आवश्यकता,
पुष्पांजलियाँ भी तुम्हें देश ने दीं अपार,
अब, हाय, तिलांजलि
देने की आई बारी।

तुम तिल थे लेकिन रहे झुकाते सदा ताड़,
तुम तिल थे लेकिन लिए ओट में थे पहाड़,
शंकर-पिनाक-सी रही तुम्हारी जमी धाक,
तुम हटे न तिल भर, गई दानवी शक्ति हार;
तिल एक तुम्हारे जीवन की
व्याख्या सारी।

तिल-तिल कर तुमने देश कीच से उठा लिया,
तिल-तिल निज को उसकी चिंता में गला दिया,
तुमने स्वदेश का तिलक किया आजादी से,
जीवन में क्या मरकर भी एक तिलस्म किया;
कातिल ने महिमा
और तुम्हारी विस्तारी।

तुम कटे मगर तिल भर भी सत्ता नहीं कटी,
तुम लुप्त हुए, तिल मात्र महत्ता नहीं घटी,
तुम देह नहीं थे, तुम थे भारत की आत्मा,
जाहिर बातिल थी, बातिल जाहिर बन प्रगटी,
तिल की अंजलि को आज
मिले तुम अधिकारी।

९

बापू की हत्या के चालिस दिन बाद गया
मैं दिल्ली को, देखने गया उस थल को भी
जिसपर बापू जी गोली खाकर सोख गए,
जो रंग उठा
उनके लोहू
की लाली से।

बिरला-घर के बाएँ को है वह लॉन हरा,
प्रार्थना सभा जिसपर बापू की होती थी,
थी एक ओर को छोटी-सी वेदिका बनी,
जिसपर थे गहरे
लाल रंग के
फूल चढ़े।

उस हरे लॉन के बीच देख उन फूलों को
ऐसा लगता था जैसे बापू का लोहू
अब भी पृथ्वी के ऊपर सूख नहीं पाया,
अब भी मिट्टी
के ऊपर
ताजा-ताजा है !

सुन पड़े धड़ाके तीन मुझे फिर गोली के
काँपने लगी पाँवों के नीचे की धरती,
फिर पीड़ा के स्वर में फूटा 'हे राम' शब्द,
चीरता हुआ विद्युत्-सा नभ के स्तर पर स्तर
कर ध्वनित-प्रतिध्वनित दिक्-दिगंत को बार-बार
मेरे अंतर में पैठ मुझे सालने लगा !....

१०

हे राम खचित यह वही चौतरा, भाई,
जिसपर बापू ने अंतिम सेज डसाई,
जिसपर लपटों के साथ लिपट वे सोए,
गलती की हमने
जो वह आग
बुझाई।

पारसी अग्नि जो थे फारस से लाए,
हैं आज तलक वे उसे ज्वलन्त बनाए,
जो आग चितापर बापू के जागी थी
था उचित उसे
हम रहते सदा
जगाए ।

है हमको उनकी यादगार बनवानी,
सैकड़ों सुझावे देंगे पंडित-ज्ञानी,
लेकिन यदि हम वह ज्वाल जगाए रहते,
होती उनकी
सबसे उपयुक्त
निशानी ।

तम के समक्ष वे ज्योति एक अविचल थे,
आँधी-पानी में पड़कर अडिग-अटल थे,
तप की ज्वाला के अन्दर पल-पल जल-जल
वे स्वयं अग्नि-से
अकलुष थे,
निर्मल थे ।

वह ज्वाला हमको उनकी याद दिलाती,
वह ज्वाला हमको उनका पथ दिखलाती,
वह ज्वाला भारत के घर-घर में जाती,
संदेश अग्निमय
जन-जन को
पहुँचाती।

पुश्तहापुश्त। यह आग देखने आतीं,
इससे अतीत की सुधियाँ सजग बनातीं,
भारत के अमर तपस्वी की इस धूनी
से ले भभूत
अपने सिर-माथ
चढ़ातीं।

पर नहीं आग की बाकी यहाँ निशानी,
प्रह्लाद-होलिका की फिर घटी कहानी,
बापू ज्वाला से निकल अछूते आए,
मिल गई राख-
मिट्टी में चिता
भवानी।

अब तक दुहरातीं मस्जिद की मीनारें,
अब तक दुहरातीं घर-घर की दीवारें,
दुहरातीं पेड़ों की हर तरफ कतारें,
दुहराते दरिया के जल-कूल-कगारे,
चप्पे-चप्पे इस राजघाट के रटते
जो लगे यहाँ थे चिता-शाम को नारे—
हो गए आज से बापू अमर हमारे,
हो गए आज से बापू अमर हमारे!.....

—

खादी के फूल

हो गया क्या देश के
सबसे सुनहले दीप का
निर्वाण !

[१]

वह जगा क्या जगमगाया देश का
तम से घिरा प्रासाद,
वह जगा क्या था जहाँ अवसाद छाया,
छा गया आह्लाद,
वह जगा क्या बिछ गई आशा किरण
की चेतना सब ओर,
वह जगा क्या स्वप्न से सूने हृदय-
मन हो गए आबाद

वह जगा क्या ऊर्ध्व उन्नति-पथ हुआ
आलोक का आधार,

वह जगा क्या मानवों का स्वर्ग ने
उठकर किया आह्वान,

हो गया क्या देश के
सबसे सुनहले दीप का
निर्वाण !

[२]

वह जला क्या जग उठी इस जाति की
सोई हुई तक़दीर,
वह जला क्या दासता की गल गई
बन्धन बनी जंजीर,
वह जला क्या जग उठी आज़ाद होने
की लगन मज़बूत,
वह जला क्या हो गई बेकार कारा-
गार की प्राचीर,

वह जला क्या विश्व ने देखा हमें
आश्चर्य से दृग खोल,

वह जला क्या मर्दितों ने क्रांति की
देखी ध्वजा अम्लान,

हो गया क्या देश के
सबसे दमकते दीप का
निर्वाण !

[३]

वह हँसा तो मृत मरुस्थल में चला
मधुमास - जीवन - श्वास,
वह हँसा तो कौम के रौशन भविष्यत
का हुआ विश्वास
वह हँसा तो जड़ उमंगों ने किया
फिर से नया शृङ्गार,
वह हँसा तो हँस पड़ा इस देश का
रूठा हुआ इतिहास,

वह हँसा तो रह गया संदेह-शंका
को न कोई ठौर,

वह हँसा तो हिचकिचाहट-भीति-भ्रम का
हो गया अवसान,

हो गया क्या देश के
सबसे चमकते दीप का
निर्वाण !

[४]

वह उठा तो एक लौ में बन्द होकर
आ गई ज्यों भोर,
वह उठा तो उठ गई सब देश भर की
आँख उसकी ओर,
वह उठा तो उठ पड़ीं सदियाँ विगत
अंगड़ाइयाँ ले साथ,
वह उठा तो उठ पड़े युग-युग दबे
दुखिया, दलित, कमजोर,

वह उठा तो उठ पड़ीं उत्साह की
लहरें दृगों के बीच,

वह उठा तो झुक गए अन्याय,
अत्याचार के अभिमान,

हो गया क्या देश के
सबसे प्रभामय दीप का
निर्वाण !

[५]

वह न चाँदी का, न सोने का न कोई
धातु का अनमोल,
थी चढ़ी उसपर न हीरे और मोती
की सजीली खोल,
मृत्तिका की एक मुट्ठी थी कि उपमा
सादगी थी आप,
किन्तु उसका मान सारा स्वर्ग सकता
था कभी क्या तोल ?

·

ताज शाहों के अगर उसने झुकाए
तो तअज्जुब कौन,

कर सका वह निम्नतम, कुचले हुओं का
उच्चतम उत्थान,

हो गया क्या देश के
सबसे मनस्वी दीप का
निर्वाण !

[६]

वह चमकता था, मगर था कब लिए
तलवार पानीदार,
वह दमकता था मगर अज्ञात थे
उसको सदा हथियार,
एक अंजलि स्नेह की थी तरलता में
स्नेह के अनुरूप,
किन्तु उसकी धार में था डूब सकता
देश क्या, संसार;

•

स्नेह में डूबे हुए ही तो हिफ़ाज़त
से पहुँचते पार,

स्नेह में जलते हुए ही कर सके हैं
ज्योति-जीवनदान,

हो गया क्या देश के
सबसे तपस्वी दीप का
निर्वाण !

[७]

स्नेह में डूबा हुआ था हाथ से
कातो रुई का सूत,
थी बिखरती देश भर के घर-डगर में
एक आभा पूत,
रोशनी सब के लिए थी, एक को भी
थी नहीं अंगार,
फर्क अपने औ' पराए में न समझा
शान्ति का यह दूत,

चाँद-सूरज से प्रकाशित एक से हैं
झोपड़ी-प्रासाद,

एक-सी सब को विभा देते जलाते
जो कि अपने प्राण,

हो गया क्या देश के
सबसे यशस्वी दीप का
निर्वाण !

[८]

ज्योति में उसकी हुए हम एक यात्रा
के लिए तैयार,
कीं उसी के आसरे हमने तिमिर-गिरि
घाटियाँ भी पार,
हम थके माँदे कभी बैठे, कभी
पीछे चले भी लौट,
किन्तु वह बढ़ता रहा आगे सदा
साहस बना साकार,

आँधियाँ आईं, घटा छाईं, गिरा
भी वज्र बारंबार,

पर लगाता वह सदा था एक—
अभ्युत्थान ! अभ्युत्थान !

हो गया क्या देश के
सबसे अचंचल दीप का
निर्वाण !

[९]

लक्ष्य उसका था नहीं कर दे महज़
इस देश को आज़ाद,
चाहता वह था कि दुनिया आज की
नाशाद हो फिर शाद,
नाचता उसके दृगों में था नए
मानव-जगत का ख़्वाब,
कर गया उसको अचानक कौन औ'
किस वास्ते बर्बाद,

बुझ गया वह दीप जिसकी थी नहीं
जीवन-कहानी पूर्ण,

वह अधूरी क्या रही, इंसानियत का
रुक गया आख्यान।

हो गया क्या देश के
सबसे प्रगतिमय दीप का
निर्वाण !

[१०]

विष घृणा से देश का वातावरण
पहले हुआ सविकार,
खून की नदियाँ बहीं, फिर बस्तियाँ
जलकर गईं हो क्षार,
जो दिखाता था अँधेरे में प्रलय के
प्यार की ही राह,
बच न पाया, हाय, वह भी इस घृणा का
क्रूर, निंद्य प्रहार,

सौ समस्याएँ खड़ी हैं, एक का भी
हल नहीं है पास,

क्या गया है रूठ प्यारे देश भारत-
वर्ष से भगवान !

हो गया क्या देश के
सबसे ज़रूरी दीप का
निर्वाण !

१

वे आत्माजीवी थे काया से कहीं परे,
वे गोली खाकर और जी उठे, नहीं मरे,
जब से तन चढ़कर चिता हो गया राख-धूर,
तब से आत्मा
की और महत्ता
जना गए।

उनके जीवन में था ऐसा जादू का रस,
कर लेते थे वे कोटि-कोटि को अपने बस,
उनका प्रभाव हो नहीं सकेगा कभी दूर,
जाते-जाते
बलि-रक्त-सुरा
वे छना गए।

यह झूठ, कि, माता, तेरा आज सुहाग लुटा,
यह झूठ, कि तेरे माथे का सिंदूर छुटा,
अपने माणिक लोहू से तेरी माँग पूर
वे अचल सुहागिन
तुझे, अभागिन,
बना गए।

२

उसने अपना सिद्धान्त न बदला मात्र लेश,
पलटा शासन, कट गई कौम, बँट गया देश,
वह एक शिला थी निष्ठा की ऐसी अविकल,
सातों सागर
का बल जिसको
दहला न सका।

छा गया क्षितिज तक अंधक अंधड़-अंधकार,
नक्षत्र, चाँद, सूरज ने भी ली मान हार,
वह दीपशिखा थी एक ऊर्ध्व ऐसी अविचल,
उंचास पवन
का वेग जिसे
बिठला न सका।

पापों की ऐसी चली धार दुर्दम, दुर्धर,
हो गए मलिन निर्मल से निर्मल नद-निर्झर,
वह शुद्ध छीर का ऐसा था सुस्थिर सीकर,
जिसको काँजी
का सिन्धु कभी
बिलगा न सका।

३

था उचित कि गांधी जी की निर्मम हत्या पर
तारे छिप जाते, काला हो जाता अंबर,
केवल कलंक अवशिष्ट चन्द्रमा रह जाता,
कुछ और नज़ारा
था जब ऊपर
गई नज़र।

अंबर में एक प्रतीक्षा का कौतूहल था,
तारों का आनन पहले से भी उज्ज्वल था,
वे पंथ किसी का जैसे ज्योतित करते हों,
नभ वात किसी के
स्वागत में
चिर चंचल था।

उस महाशोक में भी मन में अभिमान हुआ,
धरती के ऊपर कुछ ऐसा वलिदान हुआ,
प्रतिफलित हुआ धरणी के तप से कुछ ऐसा,
जिसका अमरों
के आँगन में
सम्मान हुआ।

अवनी गौरव से अंकित हों नभ के लेखे,
क्या लिए देवताओं ने ही यश के ठेके,
अवतार स्वर्ग का ही पृथ्वी ने जाना है,
पृथ्वी का अभ्युत्थान
स्वर्ग भी तो
देखे !

४

ऐसा भी कोई जीवन का मैदान कहीं
जिसने पाया कुछ बापू से वरदान नहीं ?
मानव के हित जो कुछ भी रखता था माने
बापू ने सबको
गिन-गिनकर
अवगाह लिया।

बापू की छाती की हर साँस तपस्या थी,
आती-जाती हल करती एक समस्या थी,
पल बिना दिए कुछ भेद कहाँ पाया जाने,
बापू ने जीवन
के क्षण-क्षण को
थाह लिया।

किसके मरने पर जग भर को पछताव हुआ ?
किसके मरने पर इतना हृदय मथाव हुआ ?
किसके मरने का इतना अधिक प्रभाव हुआ ?
बनियापन अपना सिद्ध किया सोलह आने,
जीने की कीमत कर वसूल पाई-पाई,
मरने का भी
बापू ने मूल्य
उगाह लिया।

५

तुम उठा लुकाठी खड़े हुए चौराहे पर,
बोले, वह साथ चले जो अपना दाहे घर,
तुमने था अपना पहले भस्मीभूत किया,
फिर ऐसा नेता
देश कभी क्या
पाएगा ?

फिर तुमने अपने हाथों से ही अपना सर
कर अलग देह से रक्खा उसको धरती पर,
फिर उसके ऊपर तुमने अपना पाँव दिया,
यह कठिन साधना देख कँपे धरती-अंबर,
है कोई जो
फिर ऐसी राह
बनाएगा ?

इस कठिन पंथ पर चलना था आसान नहीं,
हम चले तुम्हारे साथ, कभी अभिमान नहीं,
था, बापू, तुमने हमें गोद में उठा लिया,
यह आनेवाला
दिन सबको
बतलाएगा ।

६

गुण तो नि:संशय देश तुम्हारे गाएगा,
तुम-सा सदियों के बाद कहीं फिर पाएगा,
पर जिन आदर्शों को लेकर तुम जिए-मरे,
कितना उनको
कल का भारत
अपनाएगा ?

बाएँ था सागर औ' दाएँ था दावानल,
तुम चले बीच दोनों के, साधक, सम्हल-सम्हल,
तुम खड्गधार-सा पथ प्रेम का छोड़ गए,
लेकिन उसपर
पावों को कौन
बढ़ाएगा ?

जो पहन चुनौती पशुता को दी थी तुमने,
जो पहन दनुजता से कुश्ती ली थी तुमने,
तुम मानवता का महा कवच तो छोड़ गए,
लेकिन उसके
बोझे को कौन
उठाएगा ?

शासन-सम्राट डरे जिसकी टंकारों से,
घबराई फिरकेवारी जिसके वारों से,
तुम सत्य-अहिंसा का अजगव तो छोड़ गए,
लेकिन उसपर
प्रत्यंचा कौन
चढ़ाएगा ?

७

ओ देशवासियो, बैठ न जाओ पत्थर से,
ओ देशवासियो रोओ मत यों निर्झर से,
दरख्वास्त करें, आओ, कुछ अपने ईश्वर से
वह सुनता है
ग़मज़दों और
रंजीदों की।

जब सार सरकता-सा लगता जग-जीवन से,
अभिषिक्त करें, आओ, अपने को इस प्रण से--
हम कभी न मिटने देंगे भारत के मन से
दुनिया ऊँचे
आदर्शों की
उम्मीदों की।

साधना एक युग-युग अन्तर में ठनी रहे--
यह भूमि बुद्ध-बापू-से सुत की जनी रहे
प्रार्थना एक, युग-युग पृथ्वी पर बनी रहे
यह जाति
योगियों, सन्तों
और शहीदों की।

८

आधुनिक जगत की स्पर्धापूर्ण नुमाइश में
हैं आज दिखावे पर मानवता की किस्में,
है भरा हुआ आँखों में कौतूहल-विस्मय,
देखें इनमें
कहलाया जाता
कौन मीर ?

दुनिया के तानाशाहों का सर्वोच्च शिखर,
यह फ्रैंको, टोजो, मसोलिनी पर हर हिटलर,
यह रूजवेल्ट, यह ट्रूमन, जिसकी चेष्टा पर
हीरोशीमा, नागासाकी पर ढहा कहर,
यह है चियांग, जापान गर्व को मर्दित कर
जो अर्द्ध चीन के साथ आज करता संगर,
यह भीमकाय चर्चिल है जिसको लगी फ़िकर
इंगलिस्तानी साम्राज्य रहा है बिगड़-बिखर,
यह अफ्रीका का स्मट्स खबर है जिसे नहीं,
क्या होता, गोरे-काले चमड़े के अन्दर,
यह स्टलिनग्राड
का स्टलिन लौह का
ठोस वीर।

जग के इस महाप्रदर्शन में नम्रता सहित
सम्पूर्ण सभ्यता भारतीय सारी संस्कृति
के युग-युग की साधना-तपस्या की परिणति,
हम में जो कुछ सर्वोत्तम है उसका प्रतिनिधि
हम लाए हैं
अपना बूढ़ा,
नंगा फ़कीर।

९

हम गांधी की प्रतिभा के इतने पास खड़े
हम देख नहीं पाते सत्ता उनकी महान,
उनकी आभा से आँखें होतीं चकाचौंध,
गुण-वर्णन में
साबित होती
गूंगी ज़बान ।

वे भावी मानवता के हैं आदर्श एक,
असमर्थ समझने में है उनको वर्तमान,
वर्ना सच्चाई और अहिंसा की प्रतिमा,
यह जाती दुनिया
से होकर
लोहू लुहान !

जो सत्यं, शिवं, शुभ, सुन्दर, शुचितर होता है
दुनिया रहती है उसके प्रति अंधी अजान,
वह उसे देखती, उसके प्रति नतशिर होती
जब कोई कवि
करता उसको
आँखें प्रदान।

जिन आँखों से तुलसी ने राघव को देखा,
जिस अन्तर्दृग से सूरदास ने कान्हा को,
कोई भविष्य कवि गांधी को भी देखेगा,
दर्शाएगा भी
उनकी सत्ता
दुनिया को।

भारत का गांधी व्यक्त नहीं तब तक होगा
भारती नहीं जब तक देती गांधी अपना,
जब वाणी का मेधावी कोई उतरेगा,
तब उतरेगा
पृथ्वी पर गांधी
का सपना।

जायसी, कबीरा, सूरदास, मीरा, तुलसी,
मैथिली, निराला, पंत, प्रसाद, महादेवी,
ग़ालिबोमीर, दर्दोनजीर, हाली, अकबर,
इक़बाल, जोश, चकबस्त, फ़िराक, जिगर, सागर
की भाषा निश्चय वरद पुत्र उपजाएगी
जिसके तप तेजस्वी-ओजस्वी वचनों में
मेरी भविष्य
वाणी सच्ची
हो जाएगी।

मिलन यामिनी

१

चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

दिवस में सबके लिए बस एक जग है,
रात में हर एक की दुनिया अलग है,
कल्पना करने लगी अब राह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

भूमि का उर तप्त करता चंद्र शीतल,
व्योम की छाती जुड़ाती रश्मि कोमल,
किन्तु भरतीं भावनाएँ दाह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

कुछ अँधेरा, कुछ उजाला, क्या समा है,
कुछ करो, इस चाँदनी में सब क्षमा है,
किन्तु बैठा मैं सँजोए आह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

चाँद निखरा, चंद्रिका निखरी हुई है,
भूमि से आकाश तक बिखरी हुई है,
काश मैं भी यों बिखर सकता भुवन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

२

मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर ।

है मुझे संसार बाँधे, काल बाँधे,
है मुझे जंजीर औ' जंजाल बाँधे,
किन्तु मेरी कल्पना के मुक्त पर-स्वर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर ।

धूलि के कण शीश पर मेरे चढ़े हैं,
अंक ही कुछ भाल के ऐसे गढ़े हैं,
किन्तु मेरी भावना से बद्ध अम्बर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर ।

मैं कुसुम को प्यार कर सकता नहीं हूँ,
मैं कली पर हाथ धर सकता नहीं हूँ,
किन्तु मेरी वासना तृण-तृण निछावर,
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर ।

मूक हूँ, जब साध है सागर उँडेलूँ,
मूर्ति-जड़, जब मन लहर के साथ खेलूँ,
किन्तु मेरी रागिनी निर्बन्ध निर्झर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर ।

३

आज कितनी वासनामय यामिनी है !

दिन गया तो ले गया बातें पुरानी,
याद मुझको अब नहीं रातें पुरानी,
आज ही पहली निशा मनभावनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

घूंट मधु का है, नहीं झोंका पवन का,
कुछ नहीं मन को पता है आज तन का,
रात मेरे स्वप्न की अनुगामिनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

यह कली का हास आता है किधर से,
यह कुसुम का श्वास जाता है किधर से,
हर लता-तरु में प्रणय की रागिनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

दुग्ध-उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पलँग पर आज उसपर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

४

प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

मैं जगत के ताप से डरता नहीं अब,
मैं समय के शाप से डरता नहीं अब,
आज कुंतल छाँह मुझपर तुम किए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

'रात मेरी, रात का शृङ्गार मेरा,
आज आधे विश्व से अभिसार मेरा,
तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

वह सुरा के रूप से मोहे भला क्या,
वह सुधा के स्वाद से जाए छला क्या,
जो तुम्हारे होठ का मधु-विष पिए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

मृत-सजीवन था तुम्हारा तो परस ही,
पा गया मैं बाहु का बंधन सरस भी,
मैं अमर अब, मत कहो केवल जिए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

५

प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

जानता हूँ दूर है नगरी प्रिया की,
पर परीक्षा एक दिन होनी हिया की,
प्यार के पथ की थकन भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

आग ने मानी न बाधा शैल-वन की,
गल रही भुज पाश में दीवार तन की,
प्यार के दर पर दहन भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

साँस में उत्तप्त आँधी चल रही है,
किन्तु मुझको आज मलयानिल यही है,
प्यार के शर की शरण भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

तृप्ति क्या होगी अधर के रस कणों से,
खींच लो तुम प्राण ही इन चुंबनों से,
प्यार के क्षण में मरण भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

६

में प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।

मौन मुखरित हो गया, जय हो प्रणय की,
पर नहीं परितृप्त है तृष्णा हृदय की,
पा चुका स्वर, आज गायन खोजता हूँ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।

तुम समर्पण बन भुजाओं में पड़ी हो,
उम्र इन उद्भ्रांत घड़ियों की बड़ी हो,
पा गया तन, आज मैं मन खोजता हूँ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।

है अधर में रस मुझे मदहोश कर दो,
किन्तु मेरे प्राण में सन्तोष भर दो,
मधु मिला है, मैं अमृतकण खोजता हूँ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।

जी उठा मैं, और जीना प्रिय बड़ा है,
सामने, पर, ढेर मुरदों का पड़ा है,
पा गया जीवन, सजीवन खोजता हूँ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।

७

[१]

तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते।

अन्तस्तल के भाव बदलते
कंठस्थल के स्वर में,
लो, मेरी वाणी उठती है
धरती से अम्बर में,

अर्थ और आखर के बल का
कुछ मैं भी अधिकारी,
तुमको मेरे मधुगान निमंत्रण देते;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते।

[२]

अब मुझको मालूम हुई है
शब्दों की भी सीमा,
गीत हुआ जाता है मेरे
रुद्ध गले में धीमा,

आज उदार दृगों ने रख ली
लाज हृदय की जाती,
तुमको नयनों के दान निमंत्रण देते;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते।

[३]

आँख सुने तो आँख भरे दिल
के सौ भेद बताए,
दूर बसे प्रियतम को आँसू
क्या संदेश सुनाए,

भिगा सकोगी इनसे अपने
मन का कोई कोना ?
तुमको मेरे अरमान निमंत्रण देते;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते।

[४]

कवियों की सूची से अब से
मेरा नाम हटा दो,
मेरी कृतियों के पृष्ठों को
मरुथल में बिखरा दो,

मौन बिछी है पथ में मेरी
सत्ता, बस तुम आओ,
तुमको कवि के बलिदान निमंत्रण देते;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते।

[८]

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद
मेरा प्यार पहली बार लो तुम।

[१]

सूर्य जब ढलने लगा था कह गया था,
मानवो, खुश हो कि दिन अब जा रहा है,
जा रही हैं स्वेद, श्रम की क्रूर घड़ियाँ,
औ' समय सुन्दर, सुहाना आ रहा है,

छा गई है शान्ति खेतों में, वनों में
पर प्रकृति के वक्ष की धड़कन बना-सा,
दूर, अनजानी जगह पर एक पंछी
मन्द लेकिन मस्त स्वर से गा रहा है,

औ' धरा की पीन पलकों पर विनिद्रित
एक सपने-सा मिलन का क्षण हमारा,
स्नेह के कंधे प्रतीक्षा कर रहे हैं;
झुक न जाओ और देखो उस तरफ भी—

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद,
मेरा प्यार पहली बार लो तुम।

[२]

इस समय हिलती नहीं है एक डाली,
इस समय हिलता नहीं है एक पत्ता,
यदि प्रणय जागा न होता इस निशा में
सुप्त होती विश्व की सम्पूर्ण सत्ता,

वह मरण की नींद होती जड़-भयंकर
और उसका टूटना होता असंभव,
प्यार से संसार सोकर जागता है,
इसलिए है प्यार की जग में महत्ता,

हम किसी के हाथ में साधन बने हैं
सृष्टि की कुछ माँग पूरी हो रही है,
हम नहीं अपराध कोई कर रहे हैं,
मत लजाओ और देखो उस तरफ भी—

प्राण, रजनी भिंच गई नभ के भुजों में,
थम गया है शीश पर निरुपम रुपहरा चाँद,
मेरा प्यार बारंबार लो तुम।

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद,
मेरा प्यार पहली बार लो तुम।

[३]

पूर्व से पच्छिम तलक फैले गगन के
मन-फलक पर अनगिनत अपने करों से
चाँद सारी रात लिखने में लगा था
'प्रेम' जिसके सिर्फ ढाई अक्षरों से

हो अलंकृत आज नभ कुछ दूसरा ही
लग रहा है और लो जग-जग विहग दल
पढ़ इसे, जैसे नया यह मंत्र कोई,
हर्ष करते व्यक्त पुलकित पर, स्वरों से;

किन्तु तृण-तृण ओस छन-छन कह रही है,
आ गई वेला विदा के आँसुओं की,
यह विचित्र विडंवना पर कौन चारा,
हो न कातर और देखो उस तरफ़ भी—

प्राण, राका उड़ गई प्रातः पवन में,
ढल रहा है क्षितिज के नीचे शिथिल-तन चाँद,
मेरा प्यार अन्तिम बार लो तुम।

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद,
मेरा प्यार पहली बार लो तुम।

९

[१

सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की।

अम्बर-अन्तर गल धरती का
अंचल आज भिगोता,
प्यार पपीहे का पुलकित स्वर
दिशि-दिशि मुखरित होता,

और प्रकृति-पल्लव-अवगुंठन
फिर-फिर पवन उठाता,
यह मदमातों की रात नहीं सोने की;
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की।

[२]

हैं अनगिन अरमान मिलन की
ले दे के दो घड़ियाँ,
झूल रहीं पलकों पर कितने
सुख सपनों की लड़ियाँ,

एक-एक पल में भरना है
युग-युग की चाहों को,
सखि, यह साधों की रात नहीं सोने की;
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की।

[३]

बाट जोहते इस रजनी की
वज्र कठिन दिन बीते,
किन्तु अन्त में दुनिया हारी
और हमी तुम जीते,

नर्म नींद के आगे अब क्यों
आँखें पाँख झुकाएँ,
सखि, यह रातों की रात नहीं सोने की,
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की।

[४]

वही समय जिसकी दो जीवन
करते थे प्रत्याशा,
वही समय जिसपर अटकी थी
यौवन की सब आशा,

इस वेला में क्या-क्या करने
को हम सोच रहे थे,
सखि, यह वादों की रात नहीं सोने की;
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की।

१०

[१]

प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

अरमानों की एक निशा में
होती हैं कै घड़ियाँ,
आग दबा रक्खी है मैंने
जो छूटीं, फुलझड़ियाँ,

मेरी सीमित भाग्य परिधि को
और करो मत छोटी,
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

[२]

अधर पुटों में बन्द अभी तक
थीं अधरों की वाणी,
'हाँ-ना' से मुखरित हो पाई
किसकी प्रणय कहानी,

सिर्फ भूमिका थी जो कुछ
संकोच-भरे पल बोले,
प्रिय, शेष बहुत है बात अभी मत जाओ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

[३]

शिथिल पड़ी है नभ की बाहों
में रजनी की काया,
चाँद चाँदनी की मदिरा में
है डूबा, भरमाया,

अलि अब तक भूले-भूले-से
रस-भीनी गलियों में,
प्रिय, मौन खड़े जलजात अभी मत जाओ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

[४]

रात बुझाएगी सच-सपने
की अनबूझ पहेली,
किसी तरह दिन बहलाता है
सब के प्राण, सहेली,

तारों के झँपने तक अपने
मन को दृढ़ कर लूँगा,
प्रिय, दूर बहुत है प्रात अभी मत जाओ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

११

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले।

[१]

सिन्दूर लुटाया था रवि ने,
संध्या ने स्वर्ण लुटाया था,
थे गाल गगन के लाल हुए,
धरती का दिल भर आया था,

लहराया था भरमाया-सा
डाली-डाली पर गंध पवन,
जब मैंने तुमको औ' तुमने
मुझको अनजाने पाया था;

है धन्य धरा जिस पर मन का
धन धोखे से मिल जाता है;
पल अचरज और अनिश्चय के
पलकों पर आते ही पिघले,

पर सुधि में संचित साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले।

[२]

सायं-प्रात: का कंचन क्या
यदि अधरों का अंगार मिले,
तारक मणियों की संपति क्या
यदि बाँहों का गलहार मिले,

संसार मिले भी तो क्या जब
अपना अन्तर ही सूना हो,
पाना क्या शेष रहे फिर जब
मन को मन का उपहार मिले;

है धन्य प्रणय जिसको पाकर
मानव स्वर्गों को ठुकराता;
ऐसे पागलपन के अवसर
कब जीवन में दो बार मिले;

है याद मुझे वह शाम कि जब
नीलम-सी नीली सारी में, तुम, प्राण, मिलीं उन्माद-भरी
खुलकर फूले गुलमुहर तले।

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी, प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले।

[३]

आभास विरह का आया था
मुझको मिलने की घड़ियों में,
आहों की आहट आई थी
मुझको हँसती फुलझड़ियों में,

मानव के सुख में दुख ऐसे
चुपचाप उतरकर आ जाता,
है ओस ढुलक पड़ती जैसे
मकरंदमयी पंखुरियों में;

है धन्य समय जिससे सपना
सच होता, सच सपना होता;
अंकित सबके अन्तरपट पर
कुछ बीती बातें, दिन पिछले;

कब भूल सका गोधूलि कि जब
सित-सेमल सादी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं अवसाद-भरी
कलि-पुहुप झरे गुलमुहर तले।

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले।

१२

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

[१]

जिस दिन मेरी चेतना जगी मैंने देखा
मैं खड़ा हुआ हूँ इस दुनिया के मेले में,
हर एक यहाँपर एक भुलावे में भूला,
हर एक लगा है अपनी-अपनी दे-ले में,

कुछ देर रहा हक्का-बक्का, भौचक्का-सा—
आ गया कहाँ, क्या करूँ यहाँ, जाऊँ किस जा ?
फिर एक तरफ से आया ही तो धक्का-सा,
मैंने भी बहना शुरू किया उस रेले में;

क्या बाहर की ठेला-पेली ही कुछ कम थी,
जो भीतर भी भावों का ऊहापोह मचा,
जो किया, उसी को करने की मजबूरी थी,
जो कहा, वही मन के अन्दर से उबल चला;

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

[२]

मेला जितना भड़कीला रंग-रंगीला था,
मानस के अन्दर उतनी ही कमजोरी थी,
जितना ज्यादा संचित करने की ख्वाहिश थी,
उतनी ही छोटी अपने कर की झोरी थी,

जितनी ही बिरमे रहने की थी अभिलाषा,
उतना ही रेले तेज़ ढकेले जाते थे,
क्रय-विक्रय तो ठंडे दिल से हो सकता है,
यह तो भागा-भागी की छीना-छोरी थी;

अब मुझसे पूछा जाता है क्या बतलाऊँ,
क्या मान अकिंचन बिखराता पथ पर आया;
वह कौन रतन अनमोल मिला ऐसा मुझको,
जिसपर अपना मन-प्राण निछावर कर आया;

यह थी तक़दीरी बात मुझे गुण दोष न दो,
जिसको समझा था सोना, वह मिट्टी निकली,
जिसको समझा था आँसू, वह मोती निकला।

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

[३]

मैं कितना ही भूलूँ, भटकूँ या भरमाऊँ,
है एक कहीं मंजिल जो मुझे बुलाती है,
कितने ही मेरे पाँव पड़े ऊँचे-नीचे,
प्रतिपल वह मेरे पास चली ही आती है,

मुझपर विधि का आभार बहुत-सी बातों का
पर मैं कृतज्ञ उसका इसपर सबसे ज्यादा—
नभ ओले बरसाए, धरती शोले उगले,
अनवरत समय की चक्की चलती जाती है;

मैं जहाँ खड़ा था कल उस थल पर आज नहीं,
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है;
ले मापदंड जिसको परिवर्तित कर देतीं
केवल छूकर ही देश-काल की सीमाएँ

जग दे मुझपर फैसला उसे जैसा भाए
लेकिन मैं तो बेरोक सफर में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा भला।

१३

कुदिन लगा, सरोजिनी सजा न सर,
सुदिन भगा, न कंज पर ठहर भ्रमर,
अनय जगा, न रस विमुग्ध कर अधर,
—सदैव स्नेह
के लिए
विकल हृदय !

कटक चला, निकुंज में हवा न चल,
नगर हिला, न फूल-फूल पर मचल,
गदर हुआ, सुरभि समीर से न रल,
—सदैव मस्त
चाल से
चला प्रणय !

समर छिड़ा, न आज बोल, कोकिला,
कहत पड़ा, न कंठ खोल, कोकिला,
प्रलय खड़ा, न कर ठठोल, कोकिला,
—सदैव प्रीति-
गीत के
लिए समय ।

१४

समेट ली किरण कठिन दिनेश ने,
समा बदल दिया तिमिर-प्रवेश ने,
सिंगार कर लिया गगन प्रदेश ने,
नटी निशीथ
का पुलक
उठा हिया।

समीर कह चला कि प्यार का प्रहर,
मिली भुजा-भुजा, मिले अधर-अधर,
प्रणय प्रसून सेज पर गया बिखर;
निशा सभीत
ने कहा कि
क्या किया !

अशंक शुक्र पूर्व में उवा हुआ,
क्षितिज अरुण प्रकाश से छुआ हुआ,
समीर है कि सृष्टिकार की दुआ,
निशा विनीत
ने कहा कि
शुक्रिया !

१५

समीर स्नेह-रागिनी सुना गया,
तड़ाग में उफान-सा उठा गया,
तरंग में तरंग लीन हो गई;
झुकी निशा,
झँपी दिशा,
झुके नयन !

बयार सो गई अडोल डाल पर,
शिथिल हुआ सलिल सुनील ताल पर,
प्रकृति सुरम्य स्वप्न बीच खो गई;
गई कसक,
गिरी पलक,
मुंदे नयन !

विहंग प्रात गीत गा उठा अभय,
उड़ा अलक चला ललक पवन मलय,
सुहाग नेत्र चूमने चला प्रणय;
खुला गगन,
खिले सुमन,
खुले नयन !

१६

पुकारता पपीहरा पि...आ, पि...आ,
प्रतिध्वनित निनाद से हिया-हिया;
हरेक प्यार की पुकार में असर,
कहाँ उठी
कहाँ सुनी गई,
मगर !

घटा अखंड आसमान में घिरी,
लगी हुई अखंड भूमि पर झरी,
नहा रहा पपीहरा सिहर-सिहर;
अधर-सुधा
निमग्न हो रहे
अधर !

सुनील मेघहीन हो गया गगन,
बसुन्धरा पड़ी पहन हरित बसन,
पपीहरा लगा रहा वही रटन;
प्रणय तृषा
अतृप्त सर्वदा,
अमर !

१७

सुना कि एक स्वर्ग शोधता रहा,
सुना कि एक स्वप्न खोजता रहा,
सुना कि एक लोक भोगता रहा,
मुझे हरेक
शक्ति का
प्रमाण है !

सुना कि सत्य से न भक्ति हो सकी,
सुना कि स्वप्न से न मुक्ति हो सकी,
सुना कि भोग से न तृप्ति हो सकी,
विफल मनुष्य
सब तरफ़
समान है !

विराग मग्न हो कि राग रत रहे,
विलीन कल्पना कि सत्य में दहे,
धुरीण पुण्य का कि पाप में बहे,
मुझे मनुष्य
सब जगह
महान है !

१८

उसे न विश्व की विभूतियाँ दिखीं,
उसे मनुष्य की न खूबियाँ दिखीं,
मिलीं हृदय-रहस्य की न झाँकियाँ,
सका न खेल
जो कि प्राण
का जुआ!

सजीव है गगन किरण-पुलक भरा,
सजीव गंध से बसी वसुन्धरा,
पवन अभय लिए प्रणय कहानियाँ,
डरा-मरा
न स्नेह ने
जिसे छुआ!

गगन घृणित अगर न गीत गूंजता,
अवनि घृणित अगर न फूल फूलता,
हृदय घृणित अगर न स्वप्न झूलता,
जहाँ बहा
न रस वहीं
नरक हुआ!

समाप्त